वनदेवी

सिया शौर्य गाथा

डॉ. रविबाला महाजन

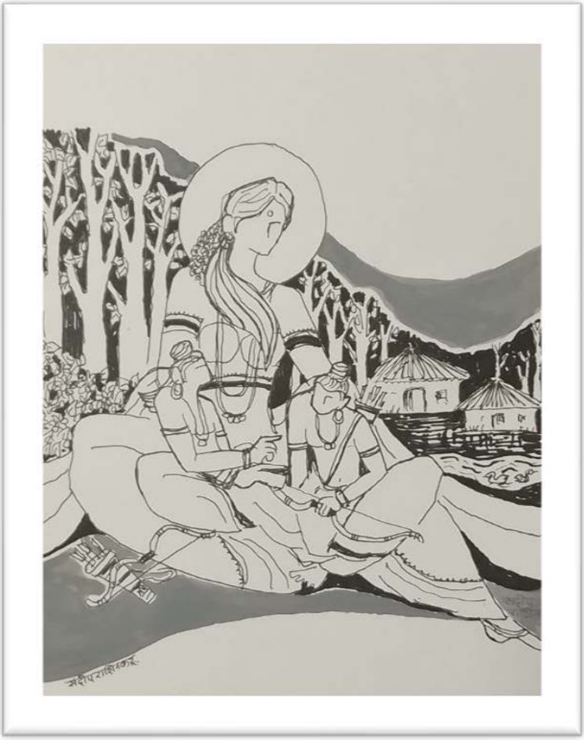

BlueRose ONE .com
Stories Matter
NewDelhi • London

BLUEROSE PUBLISHERS
India | U.K.

Copyright © Dr Ravibala Mahajan 2026

All rights reserved by author. No part of this publication may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the prior permission of the author. Although every precaution has been taken to verify the accuracy of the information contained herein, the publisher assumes no responsibility for any errors or omissions. No liability is assumed for damages that may result from the use of information contained within.

BlueRose Publishers takes no responsibility for any damages, losses, or liabilities that may arise from the use or misuse of the information, products, or services provided in this publication.

For permissions requests or inquiries regarding this publication,
please contact:

BLUEROSE PUBLISHERS
www.BlueRoseONE.com
info@bluerosepublishers.com
+91 8882 898 898
+4407342408967

ISBN: 978-93-7542-860-2

Cover Design: Mr Sandeep Rashinkar
Typesetting: Mr Shailesh Mahajan, Mr Ravindra Patidar

First Edition: April 2026

|| समर्पण ||

बचपन में पिताश्री को रोज एक मोटी लाल जिल्द वाली पुस्तक पढ़ते देखा। जब स्कूल में अक्षर ज्ञान मिला, तब धीमे–धीमे पढ़ना आया। इन्हीं दिनों में अपना स्लेट पर लिखा पिताजी को दिखाने लगी और उन्होंने मेरी पढ़ने की रुचि को बढ़ाने की गरज से, वो जो मोटी पुस्तक पढ़ते थे वही पढ़–पढ़ कर सुनाने लगे और यह नित्य क्रम बन गया। एक दिन पिताजी ने ही बताया कि यह वाल्मीकि रामायण है, इसी को सुन–सुन कर बचपन बीता। थोड़ी बड़ी हुई तो राम कथा समझ आने लगी। जब–जब भी पिताश्री ने सीता निर्वासन पढ़कर सुनाया, तब–तब लगा कि सीता मैया के साथ यह अन्याय, एक आदर्शवादी राजा ने क्यों कर किया। क्या यही राजधर्म है? क्यों राजधर्म पति धर्म को लील लेता है या कि क्यों विस्मृत कर देता है? मन इन क्यों के उत्तर मन ही मन सोचता विचारता रहा।

''वनदेवी– सिया शौर्य गाथा'' मन की इसी उलझन की मन से बनी सुलझन है जो दिवंगत पिताश्री **श्री रमणलाल जी महाजन** के श्री चरणों में सादर समर्पित है।

आपकी अज्ञानी तनया
डॉ. रविबाला निशांत महाजन

।। पुरोवाक् ।।

अग्नि से प्रश्नों का जल सा उत्तर देती– वनदेवी

त्रेतायुग की हाहाकारी घटना ''सीता निर्वासन'' और अवधपति के आदर्श आचरण के विरोधाभास से उपजे अग्नि से प्रश्नों का जल–सा उत्तर देती कृति ''वनदेवी– सिया शौर्य गाथा'' डॉ. रविबाला महाजन की पहली किताब है। जिसे लेखिका ने अपने स्वर्गीय पिताश्री को समर्पित किया है क्योंकि लेखिका ने अपने बचपन से शैशव तक रामकथा का श्रवण पिता श्री के श्रीमुख से किया और रामकथा के सीता निर्वासन से लेखिका के भावप्रवण हृदय में यह व्यथा बहुत समय तक चिंतन की सुलगती काष्ठ पर उबलती रही और इसी उबाल की वाष्प अंततोगत्वा वनदेवी के रूप में प्रस्फुटित हुई।

वनदेवी ''सीता निर्वासन'' का पुनर्लेखन नहीं है। बल्कि वनदेवी ''सीता निर्वासन'' से जन्में अष्ट तर्कों से पोषित यक्ष प्रश्नों का बारह अध्यायों में संतोष और समाधान कारक उत्तर देती है। वनदेवी के प्रभावी गद्य के पाठकीय स्वाद को प्रसंगवश दिये गये कंठस्थ योग्य पद्य स्वादिष्ट बनाते है। वनदेवी की अद्वितीयता यह है कि लेखिका रविबाला ने इस त्रेतायुगीन घटना पर जो विचारण विद्यमान किया वह भाषाई क्लिष्टता में न उलझ कर सरल, सहज और बोधगम्य भाषा में है। लेखिका बिना किसी भावातिरेक के सहजता से विवेचनीय प्रसंग के साथ–साथ अपने पाठकों का ज्ञान भी वर्धित करती है। यथा– राम वनवास के चौदह वर्षों तक समूची अयोध्या ने भी ब्रम्हचर्य का व्रत किया और वनवास अवधि में अयोध्या के किसी घर में कोई नहीं जन्मा और यह कि अश्वमेध यज्ञ स्थल पर प्रतिदिन लव–कुश गुरुवर वाल्मीकि की आज्ञा से रामायण के बीस सर्गों का मधुर गान करते थे और यह भी कि कनक–सी अयोध्या छोड़ कर कनक मृग की लिप्सा में कनक निर्मित लंका से सकुशल लौट कर और अवध की साम्राज्ञी बन कर भी अपने आश्रम में शरण लेने वाली सीता को ऋषि वाल्मीकि ने **''वनदेवी''** नाम दिया।

वनदेवी के उल्लेखनीय वाक्य विन्यास की बानगी भी दृष्टव्य है यथावत– असंभव को भी संभव करते जाना सीता है। जहाँ भी माँ होती है वहीं मायका होता है। राम आजीवन स्वीकार की मूर्ति रहे। वेदमंत्रों की ऋचाएँ मूर्तमान होकर ऋषि वाल्मीकि के पीछे चलने लगी। यह शब्दावली लेखिका के विषय गांभीर्य का द्योतक है।

आज तनावग्रस्त युवा आत्महत्या का मार्ग अपना रहें है, तब लेखिका वनदेवी में विषय विवेचन ही नहीं प्रत्युत एक महत्वपूर्ण सामाजिक संदेश 'आत्महत्या' जैसे कृत्य का प्रत्याख्यान करते कहती है कि, मानव जीवन परमार्थ के लिए प्रकृति प्रदत्त उपहार है और आत्महत्या से मनुष्य की आध्यात्मिक उपलब्धियाँ नष्ट हो जाती है। यह संदेश वनदेवी की उपादेयता में अभिवृद्धि करता है।

''वनदेवी'' कहन में कोई कोर कसर नहीं रखती लिहाजा ''वनदेवी'' सनातनी समाज और पाठक जगत में सर्वाधिक पढ़ी जाने वाली पुस्तक होकर लोकप्रिय के भूषण से विभूषित होगी। निश्चित तौर पर वनदेवी खरगोन की साहित्य निधि का वर्धन करती है और रविबाला की इस प्रथम कृति का यह साफल्य अपने पाठकों को यही भरोसा देता है कि वनदेवी के बाद जल्द ही वे अपने साहित्यिक नव सृजन के साथ फिर अपने पाठकों से रु–ब–रु होंगी।

राकेश राणा

वरिष्ठ साहित्यकार

खरगोन

लेखकीय

सनातन धर्म में जितने भी ग्रंथ है, वह मानवता की अमूल्य धरोहर है। उनमें वर्णित प्रसंगों का चिंतन–मनन करके उन्हें जीवन में आत्मसात करके हम अपनी समस्याओं का समाधान कर सकते है। तब ही भारत विश्वगुरु बन सकता है। यद्यपि, अनेकानेक विदेशी है जिन्हें न तो हमारी भाषा का ज्ञान है न ही संस्कृति का। तथापि, वे श्रीमद् भागवत गीता एवं रामायण जैसे ग्रंथों को अपने जीवन में आत्मसात कर स्वयं को सुखी व सफल बना चुके है।

क्या कारण है कि आज हम भारतीय अनेक श्लोक कंठस्थ होने के उपरांत भी जीवन में आने वाली छोटी से छोटी समस्या से भी अवसादग्रस्त और हताश हो जाते है। यहाँ तक कि आत्महत्या तक कर बैठते है।

कारण एक ही है– हमारे अपने ग्रंथों के संदेश को हम अपने ही जीवन में नहीं उतार पाते। हमारे ग्रंथों में दिए संदेश आमजन तक पहुँचें, इस हेतु हमें प्रत्येक प्रसंग को व्यावहारिक दृष्टिकोण से देखना होगा।

रामायण को हजारों वर्ष बीत चुके है, फिर भी एक प्रश्न है, जो जनमानस के मन को आज भी कचोटता है क्योंकि, प्रश्न है श्रीराम पर।

वे श्रीराम जो मर्यादा पुरुषोत्तम है, जो भारतीय जनमानस के मन में रचे–बसे है। आम भारतीय सनातनी के प्राण है। उन्हीं श्रीराम पर, (जिन्हें पतित पावन कहा जाता है और जो करुणानिधान भी माने जाते है, जिन्होंने दुष्ट रावण को भी बारम्बार चेतावनी दी थी ताकि युद्ध ना करना पड़े और जिन्हें दीनानाथ भी कहा जाता है) एक आरोप मढ़ दिया गया कि उन्होंने अपनी सती पत्नी महारानी सीता का त्याग किया और वो भी उनकी गर्भावस्था में।

इस कारण उनके चरित्र पर एक प्रश्नचिन्ह सा लगा दिया गया है, बिना यह जाने कि इससे सर्वाधिक कष्ट देवी सीता को ही होता है।

श्रीराम ने स्वयं कभी नहीं कहा कि मैंने सीता का त्याग किया है। वे हमेशा एक पत्नी व्रत का पालन करते रहे, चाहे जो भी परिस्थिति रही।

उधर, देवी सीता ने भी धरती माँ में समाहित होने से पूर्व प्रत्येक जन्म में प्रभु श्रीराम को ही पति रूप में पाने की अभिलाषा व्यक्त की और अपनी संतानों को पिता के प्रति श्रेष्ठ संस्कार दिए।

इससे ये ही प्रतीत होता है कि परिस्थितिवश दोनों को कठोर निर्णय लेना पड़े।

निराशाजनक तथ्य यह है कि सत्य जाने बिना ही एक भ्रम फैला दिया गया, जो समय के साथ विकराल होता चला गया।

आइए, उस सत्य को समझने का प्रयास करते है।

मैं कोई दावा नहीं कर रही कि प्रस्तुत वृतांत अक्षरशः सत्य है तथापि, उनके दृष्टिकोण को तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में देखने का प्रयास मैंने किया है।

अनुक्रमणिका

पुनः प्रस्तुतिकरण	1
पात्र परिचय	5
राज्याभिषेक उपरान्त राम दरबार	10
अग्निपरीक्षा	19
लंका में देवी सीता	24
लोक अपवाद, अंतर्द्वन्द्व एवं महारानी सीता का निर्णय	36
श्रीराम–सीता वार्तालाप	61
महारानी सीता का पुनः वन गमन	73
महारानी सीता–लक्ष्मण संवाद	78
वाल्मीकि आश्रम में वनदेवी	91
देवी सीता वन गमन पश्चात राम–लक्ष्मण संवाद	97
वाल्मीकि आश्रम में लव–कुश	104
अयोध्या नरेश श्रीराम द्वारा अश्वमेध यज्ञ	117
वनदेवी की शपथ	134
।। आशीर्वचन ।।	142
।। आशीर्वचन।।	144

पुनः प्रस्तुतिकरण

किसी भी वृतांत को पूर्णरूपेण समझने के लिए उस वृतांत के प्रत्येक चरण का सूक्ष्म अवलोकन आवश्यक है। इसे पुनः प्रस्तुतिकरण भी कहते है। प्रत्येक कड़ी मिलने के बाद ही उस वृतांत की समुचित जानकारी हो पाती है, किन्तु 'श्रीराम द्वारा सीता परित्याग' इस प्रसंग की समस्त कड़ियाँ मिलती प्रतीत नहीं होती, जो हमें सोचने पर विवश कर देती है जैसे –

1. यह कि, राजा द्वारा लिया कोई भी निर्णय समस्त प्रजा की रुचि अनुसार हो, यह संभव नहीं। जिनके अनुकूल निर्णय होगा, वे सराहना करेंगे। जिनके प्रतिकूल निर्णय होगा, वे विरोध करेंगे। ऐसे में सामाजिक ताने–बाने को ध्यान में रखकर हमेशा सत्य का पक्षधर बने रहना ही राजा का परम कर्तव्य है अन्यथा हमेशा अनिर्णय की स्थिति बनी रहेगी किन्तु, इस वृतांत से ऐसा प्रतीत होता है, मात्र प्रजाजन के कहने से महाराज राम ने महारानी सीता का परित्याग कर दिया जबकि, वे महारानी सीता का संपूर्ण सत्य जानते थे।

   राजा को ईश्वर का अंश माना जाता है, नीर–क्षीर विवेकी होना तथा न्यायप्रिय होना राजा बनने के लिए अनिवार्य है, तब ही एक राजा दोनों पक्षों के साथ न्याय कर सकता है। ऐसा नहीं कि एक के साथ न्याय हो और दूसरे के साथ अन्याय किन्तु, इस प्रसंग को सतही तौर पर देखें तो लगता है कि देवी सीता के साथ अन्याय हुआ है, जो 'राम राज्य की भावना' के सर्वथा विपरीत है, तात्पर्य इस प्रसंग में कुछ कड़ियाँ मिलनी शेष है।

2. यह कि, राजसत्ता का नियम होता है कि जिसे भी दंड दिया जा रहा हो, उस समय उस मनुष्य का राजा के समक्ष उपस्थित रहना अनिवार्य होता है। राजा द्वारा दंड सुनाने से पहली दंडी का पक्ष भी राज दरबार में सुना जाता है। रघुवंशी तो नियम पालन में अत्यन्त सजग थे, फिर ऐसा क्यों, कि सीताजी का पक्ष सुने बिना

उन्हें लक्ष्मण द्वारा परित्याग का संदेश सुना दिया गया, वह भी निर्जन वन में ?

3. यह कि, जब भरत राम को मनाने चित्रकूट जा रहे थे, तब उन्होंने राजा जनक को आमंत्रित किया, यह कहकर कि, पिताजी (महाराज दशरथ) के देहांत के पश्चात अब आप ही हमारे परिवार के वरिष्ठ है, हमारे पिता समान है, अतः आप ही हमारा मार्गदर्शन करें।

   जीवन की समस्याओं से निपटने के लिए घर के वरिष्ठजनों के मार्गदर्शन को आवश्यक मानने वाले रघुवंशी राम ने इस संबंध में क्या महाराज जनक से परामर्श नहीं लिया होगा ?

   क्या महाराज जनक की जानकारी के बिना देवी सीता को वनवास दे दिया गया?

   क्या इस प्रसंग से अपनी पुत्री सीता को अपना गर्व और स्वाभिमान मानने वाले महाराज जनक के हृदय को ठेस नहीं पहुँची होगी?

   महाराज जनक इस प्रसंग के लिए रघुवंशियों से रुष्ट क्यों नहीं हुए?

   फिर वे अश्वमेध यज्ञ में सम्मिलित क्यों हुए?

   उन्होंने देवी सीता को वापस जनकपुर लाने का प्रयास क्यों नहीं किया?

   इन सब तथ्यों का स्पष्टीकरण ''श्रीराम द्वारा सीता परित्याग'' की भावना से नहीं दिया जा सकता।

4. यह कि, रामायण के अनुसार लक्ष्मण अपनी माँ समान भाभी को उनकी गर्भावस्था में निर्जन वन में श्रीराम द्वारा परित्याग का निर्णय सुनाकर अकेले छोड़ आते है और अयोध्या लौट जाते है जबकि, वे एक बार दंडकारण्य में देवी सीता को कुटिया में अकेले छोड़ने का परिणाम देख चुके थे। अगर उन्हें राजाज्ञा थी तो भी

वे कम से कम सीताजी को वाल्मीकि आश्रम के अंदर तक छोड़ने जा सकते थे।

क्यों वह आश्रम की सीमा के बाहर निर्जन वन में अपनी गर्भवती भाभी माँ को असहाय अवस्था में छोड़कर गए?

क्या लक्ष्मण जैसा संवेदनशील व्यक्तित्व इस अनुचित कार्य को इतनी सहजता से कर सकता है?

5. यह कि, सीताजी के गर्भवती होने का समाचार सुन महाराज जनक और महारानी सुनयना अयोध्या आते है और श्रीराम से सीता को साथ जनकपुर ले जाने का आग्रह करते है क्योंकि, परंपरा अनुसार पहली संतान मायके में होती है किन्तु, श्रीराम से संतोषप्रद उत्तर न मिलने पर वे देवी सीता को लिए बिना ही जनकपुर लौट जाते है।

   अब जब श्रीराम ने देवी सीता का परित्याग किया तो देवी सीता को जनकपुर क्यों नहीं भेजा?

   निर्जन वन में अकेले भेजकर क्यों अपनी गर्भवती पत्नी के प्राण संकट में डाले?

6. यह कि, श्रीराम द्वारा अश्वमेध यज्ञ का आयोजन प्रजा में व्याप्त अशांति को दूर करने के लिए किया गया था। यज्ञ का आयोजन महाराज राम ने किया था (सियापति राम ने नहीं)। यज्ञ पूर्ण करने के लिए जब महाराज राम के दूसरे विवाह की बात चली तब क्यों महाराज राम ने सियापति होने की बात कहकर दूसरे विवाह का प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया जबकि, यह भी तो प्रजाजनों की इच्छा अनुसार ही होता और उस समय कूटनीति और राजनीति के हिसाब से राजाओं की एक से अधिक रानी होना सामान्य बात थी, स्वयं उनके पिता की तीन पत्नियां थी।

7. यह कि, महारानी सीता वाल्मीकि आश्रम में अपनी वास्तविक पहचान छिपाकर वनदेवी की नई पहचान से शेष जीवन व्यतीत करती है, जबकि महारानी सीता कोई सामान्य अबला नारी नहीं थी। वे परम विदुषी, शस्त्र–शास्त्र को जानने वाली, अपने कर्तव्यों

एवं अधिकारों के प्रति सजग रहने वाली निर्भीक नारी थी। यह उनके द्वारा वनवास हेतु श्रीराम के साथ वन जाने के लिए दिए गए तर्कों से स्पष्ट है।

8. यह कि, अगर सभी को ज्ञात था कि महारानी सीता वाल्मीकि आश्रम में जीवन व्यतीत कर रही है तब वे अपनी पहचान छिपाने में कैसे सफल हो जाती है ?

ऐसे अनेक प्रश्न है जो अनुत्तरित है। जब तक इनका उचित उत्तर नहीं मिलेगा तब तक हम वास्तविकता से अपरिचित ही रहेंगे।

इन्हीं सब प्रश्नों के उत्तर देती मेरी प्रथम कृति **'वनदेवी– सिया शौर्य गाथा'** आपको हस्तगत है।

आपकी प्रेरक प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा में...

– डॉ. रविबाला

पात्र परिचय

हृदय जब क्लांत हो जाए, निरर्थक प्रश्न सुन–सुनकर।
धीरज–संयम से उनसे पार, पा जाना ही सीता है।।

विषमता आए जीवन में, विधि जब खेल कर जाए।
अडिग रहकर जीवन का, ध्येय पा जाना ही सीता है।।

कठिन जब हो जीवन, निर्णय भी लेना हो नहीं संभव।
असंभव को भी संभव, करते जाना ही तो सीता है।।

वाणी के बिना क्या, बात हो सकती है तुम बोलो।
हृदय के भाव बिन बोले, समझ जाना ही सीता है।।

राम के संग जीना है, यही सपना था सीता का।
बिना श्रीराम के भी, राम पा जाना ही सीता है।।
राम पर आँच न आए, यही प्रण जनक नंदिनी का।
तमस में आस का दीपक, जलाना ही तो सीता है।।

सियावर राम कहलाते है, आज भी तो रघुनंदन।
सिया महारानी श्रीचरणों में, बारम्बार है वंदन।
जीवनभर राम में, खुद को रमा जाना ही सीता है।।

जनकसुता जगजननी जानकी, अतिशय प्रिय करुणानिधान की।
ताके जुग पद कमल मनावउ, जासु कृपा निर्मल मति पावउ।।

माँ सीता, अयोध्या की महारानी सीता, मिथिलेश नंदिनी, वैदेही, जनक नंदिनी, श्रीराम की पत्नी और वनदेवी–इन सब नामों से पाठकगण परिचित ही होंगे किन्तु, मुझे लगता है कि हम अभी भी उनके संपूर्ण व्यक्तित्व को समझ नहीं पाए है। माँ सीता को समग्र रूप से समझने के लिए उनके जीवन पर एक दृष्टि डालना आवश्यक है।

माँ सीता का प्राकट्य वैशाख शुक्ल नवमी को मिथिला क्षेत्र (वर्तमान में जनकपुर, नेपाल और पुनौराधाम बिहार) में हुआ था। उस वक्त मिथिला में अकाल पड़ा हुआ था और इसकी निवृत्ति के लिए राजा सीरध्वज जनक यज्ञ के लिए खेत में हल चला रहे थे। तभी हल की नोंक धरती में एक जगह जाकर अटक गई और देखने पर पता चला वहाँ एक स्वर्ण पात्र में नवजात बच्ची अठखेलियां कर रही थी। महाराज जनक को बड़ा आश्चर्य हुआ। नवजात बच्ची में एक मोहिनी थी, जिसने महाराज जनक और महारानी सुनयना के मन को मोह लिया। उनकी कोई संतान नहीं थी। अतः दोनों ने उस बच्ची को अपनी पुत्री के रूप में स्वीकार कर लिया। चूंकि, नवजात बच्ची हल के अग्रभाग से जोती गई भूमि से प्रकट हुई थी अतः उसका नाम सीता रखा गया। सीता के प्रकट होते ही समस्त मिथिला में वर्षा होने लगी और अकाल समाप्त हो गया। इसीलिए मिथिला की प्रजा उन्हें देवी स्वरूपा मानने लगी। सीता अब मिथिला की राजकुमारी के रूप में पिता जनक और माता सुनयना की ममता की छाँव में राजमहल में बड़ी होने लगी।

सीता दैवीय गुणों से संपन्न थी। उनके निकट रहने वाले सभी इसका अनुभव करते रहते थे। जब सीता मात्र पाँच वर्ष की थी, तब उन्होंने महर्षि परशुराम द्वारा दिए गए शिवधनुष को सहज ही उठा लिया था, जबकि वह शिवधनुष इतना भारी था कि सैकड़ों योद्धा मिलकर भी उसे हिला नहीं पाते थे। यह देख वहाँ उपस्थित सभी आश्चर्यचकित रह गए, तब महाराज जनक ने निश्चय किया कि सीता का विवाह उसी क्षत्रिय के साथ होगा, जो शिवधनुष पर प्रत्यंचा चढ़ा देगा।

बचपन से ही सीता प्रकृति प्रेमी थी। वे वन में जाने से स्वयं को रोक नहीं पाती थी। माँ सुनयना इस बात से चिंतित रहती थी, वे सीता को अकेले वन में जाने से मना करती थी। वे कहती, पुत्री कुछ सैनिक साथ ले जाया करो, इस पर सीता कहती– माँ, सेना ले जाने पर वन्य प्राणी भयभीत हो जाते है फिर वे मुझसे बात नहीं करते। मुझे पेड़ पौधों से, पशु पक्षियों से बात करने में आनंद आता है। माँ सुनयना आश्चर्य से भर जाती और कहती, तुम उनकी भाषा कैसे समझ जाती हो ? इस पर सीता कहती– माँ, ध्यान से सुनो तो पूरी प्रकृति हमसे बात करती है, मैं जिस पौधे को स्पर्श करती हूँ तो उसके औषधीय गुण मुझे पता चल जाते है। यहाँ तक कि सीता उन्हें वार्तालाप के वृतांत भी सुना देती थी। उनके इस प्रकृति प्रेम को देखते हुए माँ सुनयना ने उन्हें आत्मरक्षा हेतु शस्त्र विद्या सिखाने की ठानी। माँ की आज्ञा अनुसार बहुत ही अल्प समय में सीता शस्त्र विद्या में पारंगत हो गई, अब वे कुशल वीरांगना थी।

महाराज जनक के दरबार में ज्ञानियों के शास्त्रार्थ होते रहते थे। जिन्हें राजकुमारी सीता बड़े ध्यान से सुनती थी। यह देखकर महाराज जनक और महारानी सुनयना आश्चर्य चकित थे कि इस आयु में बच्चे अपनी बालसुलभ वृत्तियों में ही मग्न रहते है और सीता ज्ञान के प्रति इतनी जिज्ञासु है। उनकी जिज्ञासाओं ने उन्हें शास्त्र ज्ञान में भी निपुण कर दिया। सुश्री गार्गी और मैत्रेयी के विचारों से भी वे अत्यन्त प्रभावित रही। कुछ विद्वानों का तो यह भी मानना है कि वे विदुषी गार्गी की शिष्या थी।

स्त्रियोचित गुणों में उनका कोई सानी नहीं था, वे अपनी माँ के हर काम में हाथ बंटाती थी। रसोई से लेकर हर तरह के उत्तरदायित्व का वे पूरी संवेदनशीलता से निर्वहन करती थी। वे किसी को भी दुःखी नहीं देख सकती थी। स्वीकार, सत्य, प्रेम, करूणा, दया, क्षमाशीलता की तो वे मानों भंडार थी। उनसे मिलकर कोई भी अभिभूत हुए बिना नहीं रह पाता था। उनसे मिलकर असीम शांति का अनुभव होता था, इसीलिए उन्हें सब 'शांति स्वरूपा सीता' भी कहते थे।

मार्गशीर्ष (अगहन) मास की शुक्ल पक्ष की पंचमी तिथि को राजकुमारी सीता का विवाह अयोध्या नरेश दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र श्रीराम के साथ हुआ। राम और सीता आजीवन आदर्श पति–पत्नी के रूप में रहे। वे परस्पर हृदय से बात करते थे, शब्दों से नहीं। सीताजी श्रीराम की जीवन

सहचरी थी। दोनों ने अपने जीवन में यह सुनिश्चित किया कि पति–पत्नी में कोई छोटा बड़ा नहीं होता, दोनों समान महत्व रखते है। उन दोनों के बीच परस्पर प्रेम, विश्वास, आदर हमेशा रहा और यह दूर रहकर भी कम नहीं हुआ, यही कारण है श्रीराम आज भी सियावर राम कहलाते है। उनका वैवाहिक जीवन अत्यन्त चुनौतीपूर्ण था किन्तु, फिर भी उन्होंने गृहस्थ जीवन के उच्च मानदंड स्थापित किए। उन तक अन्य कोई व्यक्तित्व पहुँच नहीं पाया। वे अपना कोई भी कर्तव्य पूर्ण करने में नहीं चूकीं। अपना और अपने पति का स्वाभिमान बनाए रखते हुए अपने कर्तव्य पथ पर अडिग रहना माँ सीता के जीवन की सबसे बड़ी सीख है।

स्वयं के मन को पीड़ा में रखकर जीवन निर्वाह अत्यन्त दुष्कर कार्य है पर उस पीड़ा के साथ भी दोनों अपने–अपने कर्तव्य पथ पर अडिग रहे और यही बात हमें रामायण का बार–बार चिंतन–मनन करने की प्रेरणा देती है।

माँ सीता अयोनिजा थी। धरती के गर्भ से उनका प्राकट्य हुआ था और अश्वमेध यज्ञ के दौरान लव–कुश को श्रीराम को सौंपने के बाद नगरवासियों की जिज्ञासा को शांत करने हेतु वे पुनः धरती माँ में समाहित हो गई। भगवान के आज तक जितने भी अवतार हुए है या वापस स्वधाम गमन हुआ है, उनमें माँ सीता का आवागमन अद्वितीय है।

राज्याभिषेक उपरान्त
राम दरबार

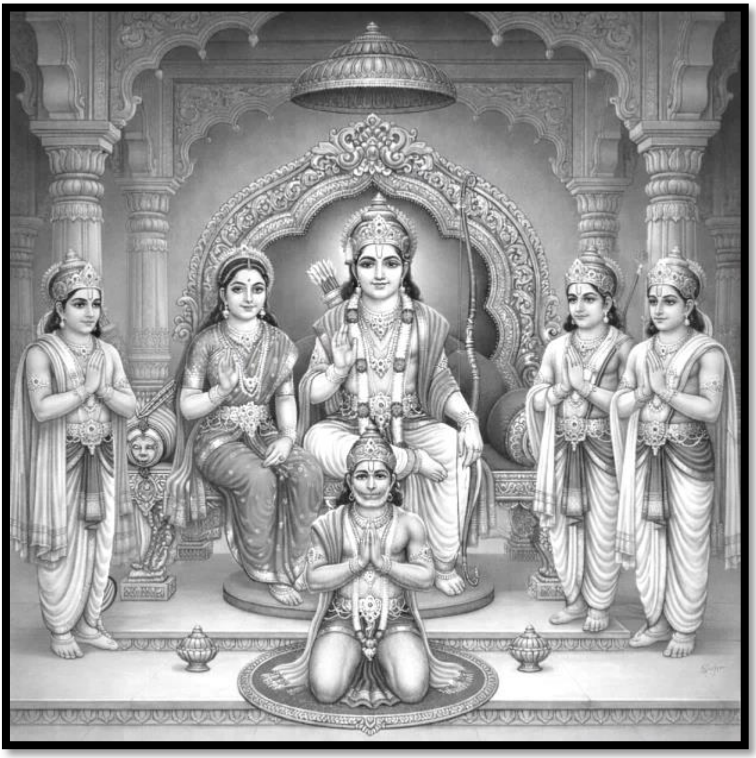

अक्षत–रोली हल्दी–कुमकुम, बंदनवार सजाओ री।
राम–लखन–सिय लौट के आए, मंगल दीप जलाओ री।।

चौदह वर्ष के तप का फल यह, राम राज्य साकार हुआ।
धन्य–धन्य जागे भाग्य अवध में, नव ऊर्जा संचार हुआ।।

राम ही नीति राम ही रीति, दृढ़ विश्वास जगाओ री।
राम के पदचिन्हों पर चलकर, जीवन सफल बनाओ री।।

माता कैकेयी के वचन अनुसार श्रीराम, देवी जानकी और भैया लक्ष्मण चौदह वर्ष का वनवास पूर्ण कर पुनः अयोध्या लौट आए है। वनवासकाल में उन्होंने निर्देशित नियमों का पूर्ण पालन किया। वनवास मात्र इन तीनों ने ही नहीं भोगा अपितु परिवार सहित संपूर्ण अयोध्या ने किसी न किसी रूप में भोगा है।

अयोध्या पुनरागमन पर भव्य स्वागत किया गया। रामराज्य की जो कल्पना अयोध्यावासियों ने की थी, वो अब साकार होने को थी।

प्रभु श्रीराम का राज्याभिषेक हो गया है, राजपाट का संचालन अब सियारामजी महाराज कुशलतापूर्वक कर रहे है।

जी हाँ– सियारामजी महाराज क्योंकि, देवी सीता और प्रभु श्रीराम मिलकर राज्य संचालन कर रहे है। ये उदाहरण मात्र अयोध्या में देखने को मिलता है। जहाँ सिंहासन पर श्रीराम और देवी सीता दोनों विराजते है।

प्रभु श्रीराम देवी सीता को अपनी अर्द्धांगिनी मात्र मानते ही नहीं है अपितु, उसी के अनुरूप उनकी जीवनशैली भी है। देवी सीता भी श्रीराम की अर्द्धांगिनी होने का महत्व और राजसिंहासन के प्रति अपना कर्तव्य भलीभाँति समझती है। वे जानती है कि एक राजा प्रथमतः राजधर्म से बंधा होता है। उसी तरह वे भी अपना राजधर्म उचित प्रकार से निभाने के प्रति सजग है।

प्रभु श्रीराम ने जब राजपाट संभाला तो वे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्न हुए कि भ्राता भरत ने नंदीग्राम में वनवासी जीवन व्यतीत करते हुए भी शत्रुघ्न की सहायता से उन चौदह वर्षों में अयोध्या का कुशलतापूर्वक संचालन किया। प्रजा में कोई असंतोष नहीं था और देश की एकता–संप्रभुता पर भी कोई आंच नहीं आई।

अत्यन्त विषम परिस्थितियों में भरत ने राजपाट संभाला था क्योंकि –

1. महाराज दशरथ का असामयिक निधन,
2. युवराज राम का वनगमन और
3. प्रजा में असंतोष था कि कुमार भरत को हम पर थोप दिया गया और हमारे युवराज राम को वनवास दे दिया गया।

इन सभी चुनौतियों के उपरांत भी अयोध्या ने हर क्षेत्र में प्रगति की, जिससे प्रभु श्रीराम अभिभूत थे। उन्हें अपने अनुज भरत और शत्रुघ्न पर बड़ा गर्व था।

अपने राज्य की उन्नति, प्रजा की खुशी, संतुष्टि एवं प्रजा का धर्मानुसार आचरण करना– अब यही सियारामजी महाराज का ध्येय था।

और ऐसा था भी– महाराज राम जैसे न्यायप्रिय, शूरवीर, संवेदनशील और महारानी सीता के ममतामयी व्यक्तित्व की छाँव में अयोध्या की प्रजा अत्यन्त सुखपूर्वक रह रही थी। सभी तृप्त थे, लेशमात्र भी असंतोष न था। सभी अपने–अपने कर्तव्यों का निष्ठापूर्वक वहन कर रहे थे और सभी को उचित अधिकार भी मिले हुए थे। कहीं कोई शिकायत नहीं– यही तो 'रामराज्य' की सबसे बड़ी विशेषता थी।

महल में भी सब कुछ भलीभाँति व्यवस्थित था। तीनों माताएँ अब तीर्थाटन करना चाहती थी क्योंकि, चारों बहुओं ने अपने उत्तरदायित्व अच्छे से संभाल लिये थे। देवी सीता के निर्देशन में सभी कार्य सुचारू रूप से हो रहे थे। कार्य प्रबंधन में महारानी सीता का कोई सानी नहीं था।

हर मनुष्य में कुछ विशेषता होती है तो कमियाँ भी– महारानी सीता इन सब बातों को समझकर रुचि अनुरूप ही कार्य सौंपती थी। परिणाम यह होता कि किसी को भी कार्य भार सा प्रतीत नहीं होता था। सब अपने कार्य में आनंद का अनुभव करते थे।

इतनी खुशियों के बीच एक दिन अयोध्यावासियों की खुशियाँ अनंत हो गई, जब पता चला कि महारानी सीता माँ बनने वाली है। अयोध्या को अपना उत्तराधिकारी मिलने वाला था। संपूर्ण नगर में अपने राजपरिवार की कुशलता के लिए प्रार्थना–पूजा होने लगी।

चारों ओर उल्लास का वातावरण था। ऐसे में पता नहीं कहाँ से एक शंका ने जन्म लिया, जिसने अयोध्या वासियों के जीवन में भूचाल–सा ला दिया।

महारानी सीता इतनी सुंदर–सुशील है कि उनके व्यक्तित्व से प्रभावित हुए बिना कोई रह ही नहीं सकता।

दूसरी ओर रावण इतना दुष्ट व्याभिचारी। कैसे रही होगी वे अकेली इतने समय तक?

क्या रावण जैसे दुष्ट से अपनी रक्षा कर पाना महारानी के लिए संभव हो पाया होगा– अकेली नारी, वह भी बिना अस्त्र–शस्त्र के?

इस प्रश्न ने अब अयोध्यावासियों का सुख–चैन छीन लिया था जबकि, अयोध्यावासी यह बात अच्छी तरह जानते थे कि जब श्रीराम ने माता अहिल्या को स्पर्श किया तो गौतम ऋषि ने उन्हें पुनः धर्मपत्नी के रूप में सहर्ष स्वीकार कर लिया, यह कहकर कि राम तुम्हारे संपर्क में आते ही पतित भी पवित्र हो जाते है। फिर महारानी सीता तो प्रभु की अर्द्धांगिनी थी, हर क्षण अपने प्रभु के साथ ही रहती थी किन्तु, समय बड़ा बलवान होता है। विपरीत परिस्थिति आने पर सबसे पहले मनुष्य का विवेक मर जाता है– यही अयोध्यावासियों के साथ भी हुआ।

वैसे तो प्रजा श्रीराम को सत्यवादी मानती थी पर अब देवी सीता द्वारा दी गई अग्निपरीक्षा को प्रजा कपोल कल्पना मानने लगी।

महारानी सीता की अग्निपरीक्षा को किसने देखा? यह पुनः ली जानी चाहिए। इसमें महारानी सीता को कोई आपत्ति नहीं होना चाहिए। साँच को आँच क्या?

जैसे वहाँ दी थी, वैसे ही यहाँ हम सबके समक्ष दे दें, बस!

वे तो सती है उनके लिए तो बहुत छोटी बात है, उसमें क्या? बस एक बार अपना सतीत्व प्रमाणित कर दें, फिर हम भी खुश और वे भी खुश ।

किन्तु, प्रजाजनों को समझ नहीं आ रहा था कि वे क्या मांग रहे थे और इसके दूरगामी परिणाम समाज में क्या होंगे? महिलाओं की स्थिति समाज में कैसी हो जाएगी? यह कोई जानना ही नहीं चाहता था।

प्रजा अपने प्रिय राजा दशरथ को अपनी पत्नी कैकेयी के प्रेमपाश में पड़कर स्वयं का सर्वनाश करते देख चुकी थी और उसी दृष्टि से अब वो प्रभु श्रीराम को भी देख रही थी।

प्रजा के अनुसार– प्रभु श्री राम सर्वगुण संपन्न है, बस एक दोष रह गया, अपनी पत्नी के प्रति आसक्ति। इसी आसक्ति के कारण उन्होंने अपने पिता चक्रवर्ती सम्राट दशरथ का अंत होते देखा है फिर भी उन्हें ज्ञान क्यों नहीं हो रहा ?

पत्नी प्रेम में पड़कर अर्थ–अनर्थ का भान ही नहीं रहा। वे तो राजा है, दूसरा विवाह कर सकते है। माना कि महारानी सीता अत्यन्त शीलवती–गुणवती है, पर इस तरह उनकी आसक्ति में पड़कर भविष्य में वे कुछ अनुचित निर्णय भी ले सकते है– नहीं, यह उचित नहीं।

प्रजा के अनुसार ''राजा–रानी का कर्तव्य है– स्वयं भी धर्म के पथ पर चले और प्रजा को भी प्रेरित करें।''

यथा राजा तथा प्रजा।

महारानी कैकेयी को देखो। वे भी राज्य संचालन में निपुण एवं युद्ध कौशल में प्रवीण थी। महाराज दशरथ के साथ वे युद्ध में भी गई थी और उन्हीं के कारण राजा दशरथ के प्राण बचे थे।

बताओ इतनी बुद्धिमति एवं अनुभवी रानी भी अपनी दासी मंथरा की बातों में आ गई और अपना सर्वनाश कर बैठी।

कहते है राम महारानी कैकेई को सबसे प्रिय थे, भरत से भी अधिक । फिर भी दासी मंथरा के दुष्प्रभाव में आकर उन्होंने अपने प्रिय राम को वनवास दे दिया।

समय का कोई भरोसा नहीं कब किसकी मति फेर दे।

इसलिए महाराज राम और महारानी सीता दोनों को लोकमर्यादा का पालन तो करना ही होगा।

सुना है लंका विजय उपरांत समुद्रतट पर हुई अग्निपरीक्षा में स्वयं अग्निदेव ने प्रकट होकर महारानी सीता की शुचिता की साक्षी दी थी तो एक बार पुनः हो जाएगी।

महाराज राम को महारानी सीता से अपनी पवित्रता सिद्ध करने को अवश्य कहना चाहिए। अयोध्या के पारिवारिक और सामाजिक ताने–बाने को बनाए रखने के लिए कोई अन्य उपाय हमें मान्य नहीं है। महारानी सीता को अपनी शुचिता सिद्ध करनी ही होगी।

प्रजा में यही सब बातें चल रही थी।

कुछ प्रजाजन इसके विरोध में भी थे–

अरे! हमारे महाराज राम तो ईश्वर का अंश है, तो महारानी सीता भी देवी हुई। ईश्वर कभी झूठ बोलता है भला! हमारे रघुवंशी तो सत्य प्रिय है। राम स्वयं अपने पिता का वचन निभाने को सहर्ष वन चले गए थे। वहाँ उन्होंने अपने वनवास धर्म का अक्षरशः पालन किया, भले ही उन्हें कितनी ही प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करना पड़ा हो। वे चाहते तो त्रिलोक विजयी रावण से युद्ध करने के लिए अवध से या जनकपुरी से सैन्य सहायता मांग सकते थे किन्तु, उन्होंने ऐसा नहीं किया। राक्षस जैसी क्रूर प्रजाति से लड़ने लिए वानर सेना बनाई, समुद्र पर सेतु बांधा और लंका पर विजय प्राप्त की। यह सब सामान्य मनुष्य के वश की बात नहीं।

ऐसे में हमें उनकी बात पर विश्वास करना चाहिए। पता है रावण वध के बाद प्रतिशोध लेने के लिए सहस्त्र रावण ने जब आक्रमण किया तो कोई कुछ समझ पाता उसके पहले ही महारानी सीता ने बिना अस्त्र–शस्त्र के सहस्त्र रावण का वध कर दिया।

अर्थात् महारानी सीता भी युद्ध कौशल में निपुण है तभी तो लंका में रहकर भी वे स्वयं को सुरक्षित रख पाई और सुना है– रावण को श्राप था कि यदि वह किसी नारी की इच्छा के विरुद्ध उस पर अधिकार करने का प्रयास करेगा तो उसका सिर टुकड़े–टुकड़े हो जाएगा। अतः पुनः अग्निपरीक्षा का कोई औचित्य नहीं है।

किन्तु, ऐसे लोग कम ही थे। अधिकांशतः तो अग्नि परीक्षा के पक्षधर ही थे।

महाराज राम समय–समय पर स्वयं का मूल्यांकन करने के लिए गुप्तचरों के समूह को नगर में भेजकर पता करते रहते थे कि राज्य में क्या चल रहा है। प्रजा प्रसन्न और संतुष्ट तो है। कहीं कोई समस्या तो नहीं।

हर बार गुप्तचर जब महाराज राम से मिलते तो एक ही बात कहते– महाराज की जय हो! आप जैसे प्रतापी और धर्मात्मा राजा के राज्य में भला कोई दुखी कैसे हो सकता है। मनुष्यों की छोड़िए, हमारे यहाँ तो पशु–पक्षी भी तृप्त है। प्रजा धर्मानुसार ही जीवन–यापन कर रही है– कहीं कोई शिकायत नहीं।

खेत खलिहान फसलों से भरे पड़े है। नदियाँ और तालाब स्वच्छ जल से परिपूर्ण है। कहीं कोई रोग–शोक नहीं है। प्रजा अपने महाराज और महारानी को क्रमशः पिता और माता तुल्य ही मानती है और आपके आदेशों का पूर्ण मन से अनुसरण करती है। आप ही उनके आराध्य है, आप ही उनका गर्व है।

महाराज राम, प्रसन्नतापूर्वक– दूत, क्या तुम सत्य कह रहे हो?

दूत– जी महाराज। शत–प्रतिशत सत्य।

महाराज राम– क्या प्रजा को सच में कोई अभाव नहीं है?

दूत– जी महाराज, कोई अभाव नहीं है। अगर अभाव है भी तो वह अभाव का अभाव है महाराज। आप निश्चिंत रहिए।

समय आने पर महाराज राम ने पुनः गुप्तचरों को नगर भ्रमण पर भेजा। जब गुप्तचर महाराज राम से मिलने आए तो सभी ने वही बात दोहराई पर कुछ गुप्तचर प्रसन्न नहीं थे, इससे महाराज राम चिंतित हो उठे। जो गुप्तचर प्रसन्न नहीं थे, उन्हें महाराज राम ने मंत्रणा कक्ष में रोक लिया और हर एक से एकांत में मंत्रणा की– क्या बात है, आप प्रसन्न क्यों नहीं दिखाई पड़ रहे हो? आपका स्वास्थ्य तो ठीक है? परिवार में कोई समस्या तो नहीं ? आप भी हमारी प्रजा है, आपको भी संतुष्ट व खुश रखना हमारा कर्तव्य है।

दूत– नहीं महाराज, ऐसी कोई बात नहीं है। बस थोड़ी थकान हो रही है, इसीलिए कदाचित आपको ऐसा लग रहा है।

महाराज राम– अरे! क्या यह राजकीय कार्य की अधिकता का परिणाम है? ऐसा कदापि नहीं होना चाहिए। किसी का भी शोषण नहीं होना चाहिए।

दूत (हाथ जोड़ते हुए)– दुहाई हो महाराज! ऐसा कुछ नहीं है। आप इतना कष्ट ना करें। सब ठीक है।

महाराज राम (दूत के कंधे पर हाथ रखते हुए बड़े स्नेह से)– तो फिर क्या बात है मित्र? सच–सच बताओ। तुम दूत बने ही इसलिये हो कि एक राजा राज्य की समस्त परिस्थितियों से अवगत हो सके। इसलिए अपना कर्तव्य उचित प्रकार से निभाओ, परिणाम की चिंता मत करो।

दूत की आँखों में आँसू आ गए। वह कुछ बोल नहीं पाया। यह देख महाराज राम व्यग्र हो उठे कि, अवश्य ही कुछ गंभीर विषय है।

महाराज राम– कहो मित्र, निःसंकोच कहो।

दूत– महाराज, एक बात पूछूं?

महाराज राम– हाँ, अवश्य पूछो मित्र।

दूत– महाराज, माता–पिता का संतान के पालन पोषण के अतिरिक्त और क्या कर्तव्य होता है?

महाराज राम– संतान को उच्च संस्कार देना, कर्तव्यपथ पर चलने को प्रेरित करना एवं यथासंभव जीवन की नकारात्मकता से दूर रखना।

दूत– महाराज, यदि संतान कुछ अनुचित मांग करे तो क्या माता–पिता को वह पूर्ण करना चाहिए?

महाराज राम– मित्र, ऐसी स्थिति में हमें संतान को उचित–अनुचित का भेद समझाना होगा। अनुचित मांग को पूर्ण कर हम उसका हित नहीं करेंगे अपितु अहित कर बैठेंगे।

दूत (हाथ जोड़ते हुए)– धन्यवाद महाराज, बस यही दुविधा थी। आपकी कृपा से दूर हो गई। संतान की अनुचित मांग को माता–पिता को नहीं मानना चाहिए। इसी में संतान का हित है।

दूत चला जाता है किन्तु, महाराज राम का प्रश्न अनुत्तरित ही रह जाता है।

कहीं से संतोषप्रद उत्तर ना मिलने पर महाराज राम स्वयं ही भेष बदलकर नगर भ्रमण पर निकल पड़े और सारी वस्तुस्थिति जानकर उनके पैरों तले जमीन खिसक गई, ऐसा लगा मानों शरीर से प्राण निकल गए हो, सोचने समझने की शक्ति ही न रही।

अत्यन्त कठिनाई से स्वयं को संभालते हुए पुनः महल की ओर लौट आए किन्तु, महल में प्रवेश करने का साहस नहीं जुटा पा रहे थे। दूत की बातों का मर्म समझ में आ रहा था। जैसे–तैसे कक्ष में पहुँचे और निढाल होकर गिर गए। आँखों से अविरल अश्रुधारा बह चली।

अग्निपरीक्षा

अग्नि परीक्षा होगी सुनकर, लखनलाल उद्विग्न हुए।
भाभी जैसी सती ना दुजी, क्यों उन पर फिर प्रश्न उठे।।

विनती करूं मैं अग्निदेव, अब साक्षी दो मेरी।
रोम–रोम में राम बसे, प्रीत साँची है मेरी।।

हुई प्रज्वलित अग्नि जानकर, वैदेही ने प्रवेश किया।
वैदेही है पावन रघुवर, अग्निदेव ने निर्णय दिया।।

श्रीराम विचार करने लगे –

नियति इतनी कठोर कैसे हो सकती है ?

ओह! देवी सीता !

इस बात का अंदेशा था मुझे। तभी तो रावण वध के पश्चात् जब देवी सीता से भेंट हुई तो वे मेरी भावभंगिमा से ही समझ गई कि मेरे मन में क्या दुविधा थी। वैसे तो मुझे उन पर स्वयं से भी ज्यादा विश्वास था और सदैव रहेगा, फिर भी लोक अपवाद से बचने के लिए और निरर्थक प्रपंच से मुझे बचाने के लिए उन्होंने अग्नि परीक्षा सा कठोर निर्णय लिया कि, मेरे तो प्राण निकले जा रहे थे। उस समय लक्ष्मण सहित सेना में उपस्थित सब मुझे अचरज भरी नजरों से देख रहे थे कि मैं इस अग्नि परीक्षा को रोक क्यों नहीं रहा। मैं अंदर ही अंदर अत्यन्त व्यग्र व अधीर हो उठा था। मैं कदापि नहीं चाहता था कि देवी सीता को अपनी पवित्रता प्रमाणित करना पड़े, किन्तु कोई अन्य उपाय भी तो न था।

दूसरी ओर देवी सीता बिल्कुल सहज और शांत थी। उनके मुख मंडल पर मुझे देख पाने की प्रसन्नता स्पष्ट झलक रही थी। राज परिवार की होने के नाते उन्हें राज्य के प्रति अपने कर्तव्यों का भान था, वहीं नारी होने के नाते समाज के दृष्टिकोण को भी वे समझती थी और रघुवंश एवं अपने राम के नाम पर तो वे किंचित भी आँच नहीं आने देना चाहती थी।

तभी तो हनुमान के लंका पहुँचने पर यदि वे उचित समझती तो हनुमान के साथ वापस लौट सकती थी किन्तु, उन्होंने हनुमान का निवेदन अस्वीकार कर दिया, यह कहकर कि पुत्र हनुमान मैं कुछ कारणों से तुम्हारे साथ नहीं चल सकती –

पहला– मैं प्रभु श्रीराम के अतिरिक्त अन्य किसी पुरुष का स्वेच्छा से स्पर्श नहीं करना चाहती। रावण मेरी इच्छा के विपरीत मुझे यहाँ लेकर आया है।

दूसरा– कहने को तो रावण पुलस्त्य ऋषि के कुल से तथा महर्षि विश्रवा की संतान है। वेदों का ज्ञाता एवं प्रकांड विद्वान होने पर भी उसका आचरण निंदनीय है। मैं कोई पहली स्त्री नहीं हूँ, जो उसके अत्याचार से पीड़ित है, ऐसी अनेकानेक स्त्रियाँ, यहाँ तक कि देवकन्याएँ है जो उसके अमानवीय अत्याचार की आग में झुलस रही है और बड़े दुर्भाग्य की बात है

कि उसके ही कुल के अधिकतर सदस्य उसके इन घृणित कार्यों का समर्थन करते आ रहे है। स्त्री ही समस्त संसार की जन्मदात्री होती है, उसकी मान–मर्यादा भंग करने वाले रावण का कुल सहित विनाश करना उतना ही आवश्यक है, जितना ऋषि–मुनियों पर आक्रमण करने वाले राक्षसों का। अगर मैं तुम्हारे साथ चली गई तो मेरी प्राण रक्षा तो हो जाएगी किन्तु, अन्य स्त्रियों पर रावण निर्बाध रूप से अत्याचार करता रहेगा। श्रीराम–लक्ष्मण जैसे वीरों के होते हुए स्त्री जाति का मान भंग होना कदापि–कदापि स्वीकार्य नहीं। मुझे ज्ञात है समुद्र लांघकर आना, वनवासी होते हुए सेना बनाना, मायावी राक्षसों से युद्ध करना सरल कार्य नहीं किन्तु, श्रीराम तो दुष्कर कार्य करने के लिए ही जाने जाते है और मुझे पूर्ण विश्वास है कि स्त्री स्मिता की रक्षा के लिए वे दुष्ट रावण का कुल सहित विनाश करके रहेंगे।

तीसरा– संसार श्रीराम के शौर्य एवं पौरुष पर प्रश्न उठाएगा। उनकी कीर्ति धूमिल होगी, जो मुझे कदापि स्वीकार नहीं।

राम सोचते है कि 'यह सीता के धैर्य और साहस का ही परिणाम था कि समस्त संसार को अत्याचारी रावण और उसके कुल से मुक्ति मिल चुकी थी।'

तभी तो क्षण भर में मेरे कहे बिना ही देवी सीता ने अग्नि परीक्षा का निर्णय ले लिया।

मुझे भान था कि इस तरह सबके समक्ष अग्निपरीक्षा देना इतना सरल कार्य नहीं था, किन्तु देवी सीता कठिन कार्यों को करने में कभी पीछे नहीं रही, फिर चाहे वो मात्र पाँच वर्ष की छोटी–सी आयु में भगवान शिव का धनुष उठाना हो या मेरे साथ वनगमन का निर्णय हो। रावण की लंका में निःशस्त्र रहकर भी स्वयं को सुरक्षित रख पाना और लंका विजय उपरांत अपनी धीरता–गंभीरता का परिचय देते हुए सहज भाव से अग्नि परीक्षा देने की बात कह डाली। मेरे निष्ठुर व्यवहार से भी वे विचलित नहीं हुई। मेरी कठोर बातें सुनकर भी वे मेरी ओर उतने ही प्रेम, विश्वास और आदर से देख रही थी, जैसे पहले देखा करती थी। मैं उनसे नजरें नहीं मिला पा रहा था। स्वयं को मन ही मन धिक्कार रहा था पर वे मन ही मन मेरा साथ दे रही थी, यह जताते हुए कि श्रीराम सही है। श्रीराम कभी गलत नहीं हो सकते।

यह देवी सीता की विशेषता ही है कि उन्हें मुझसे बात करने के लिए शब्दों की आवश्यकता नहीं होती। वे मुझे देखकर ही मेरे मन के भाव पहचान लेती है और फिर वही करती है, जो मेरे मन के अनुकूल हो।

धीरता, दृढ़ता, कर्तव्य के प्रति सजगता देवी सीता की वो विशेषताएं है कि उनके आगे मैं भी नतमस्तक हूँ।

राम का वर्तमान राम में रूपांतरण तो देवी सीता के संग से ही संभव हो पाया। देवी सीता के बिना तो इस राम का अस्तित्व ही संभव नहीं है।

मन ही मन (देवी सीता से)– 'तुम्हारे बिना तो मुझे स्वर्ग का राज्य भी नहीं चाहिए फिर यह तो मृत्युलोक का राज्य है। तुम्हारे साथ वनवास का समय भी आनंदपूर्वक बीता, कभी कोई अभाव अनुभव ही नहीं हुआ। मुझे तुम्हारे अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहिए, न अयोध्या का राज्य, न कुछ और ही। तुम तो मेरी प्रेरणा हो, प्राण हो सीते!'

यह सब सोचते–विचारते सीता हरण की घटना मानों राम के सामने पुनः जीवंत हो उठी।

देवी सीता का हरण रावण के लिए इतना भी सरल न था क्योंकि, वनवास काल में अनेकों बार राक्षसों से हमारा सामना हुआ था। अतः देवी सीता को पता था वन में स्वयं को सुरक्षित रखना कितना दुष्कर कार्य है। उस पर स्त्री होने के नाते हम दोनों भाई उनकी सुरक्षा को लेकर अत्यन्त सजग रहते थे और यह बात वे भी अच्छी तरह समझती थी। तभी तो पूरे वनवास काल में देवी सीता की सुरक्षा के लिए हमने जो मर्यादा स्थापित की थी, उसे देवी सीता ने सदैव सहर्ष स्वीकार किया। बस वह पहली ही बार हुआ कि उन्हें सुरक्षा रेखा लांघनी पड़ी क्योंकि, साधु वेशधारी रावण उनके राम को, रघुकुल को अपशब्द कह रहा था। वे यह सब सुन नहीं पायीं।

यही तो देवी सीता की विशेषता है कि जब भी बात राम पर आती है तब वह राम के आगे ढाल बनकर खड़ी हो जाती है। लंका में उन्होंने कितनी यातनाएँ झेली, किन्तु लंका की पीड़ा कभी अपने मुख से नहीं बताई।

यह तो हनुमान, विभीषण और त्रिजटा द्वारा मुझे ज्ञात हुआ कि वहाँ उन्हें कितना प्रताड़ित किया गया। अन्य कोई होता तो आत्म समर्पण कर चुका होता पर देवी सीता तो तनिक भी विचलित न हुई। सही अर्थों में यही रावण की वास्तविक पराजय थी।

लंका में देवी सीता

कनक भवन को छोड़ के आई, कनक मृग में उलझ गई।
राम सिया की जोड़ी देखो, कुछ ही पल में बिखर गई।।

शब्दों की मर्यादा लांघी, लखन लाल को दुःख दिया।
अगले पल लंकेश ने आके, वैदेही का हरण किया।।

बिन देखे श्रीराम को, तजु नहीं निज देह।
प्रण है जनक दुलारी का, नैनन बरसे मेह।।

जब रावण देवी सीता का हरण करके लंका ले गया, तब वह उनकी ओर ध्यान नहीं दे पाया क्योंकि, देवी सीता की इच्छा के विपरीत उन्हें बंधक बनाना, विमान में ले जाना और उस पर जटायु से युद्ध भी करना, यह सबकुछ इतना शीघ्र हुआ कि वह देवी सीता पर ध्यान ही नहीं दे पाया। अभी उसका एकमात्र उद्देश्य था कि राम लक्ष्मण के आने के पहले विमान को लंका ले जाना।

राम विचारते है, देवी सीता भी इतनी साहसी थी कि रावण द्वारा असहाय बना दिए जाने के उपरांत भी वे अपने पहने हुए आभूषण विमान से गिराते गई, ताकि हमें यह ज्ञात हो सके कि वे किस दिशा में गई है और यह बात आगे चलकर हमारे लिए मील का पत्थर प्रमाणित हुई।

कुछ दिनों पश्चात रावण अपने महल में देवी सीता से भेंट करने के लिए अशोक वाटिका जाने के लिए तैयार हो रहा है। महारानी मंदोदरी रावण की सेवा में ही है।

रावण– देखिए महारानी, अब मैं उन तपस्वियों को कैसा सबक सिखाता हूँ, मेरी बहन शूर्पणखा के अपमान का कैसे प्रतिशोध लेता हूँ। ऐसे कैसे कोई लंका की राजकुमारी के नाक–कान भंग कर सकता है, वह भी लंका की सीमा में। हम त्रिलोक विजेता है महारानी। लंका या किसी भी लंकावासी का अहित करने वाले को ऐसा दंड मिलेगा कि संपूर्ण त्रिलोकी याद रखेगी। उन तपस्वियों के अपराध का दण्ड राम की पत्नी सीता को अवश्य भोगना होगा।

क्रोध, अभिमान में भरकर रावण अशोक वाटिका की ओर चला गया ।

महारानी मंदोदरी, (मन ही मन) 'बेचारी सीता! हे ईश्वर!उसकी रक्षा करना।'

अशोक वाटिका में दूर से ही रावण की पहली नजर देवी सीता पर पड़ी। उनकी आँखों से आँसू बह रहे है, मन ही मन राम नाम का स्मरण करती जान पड़ती है। अब जाकर रावण ने देवी सीता को ध्यानपूर्वक देखा। मन के भाव मानों बदल से गए। ये है सीता! इतनी सुकुमारी, वय में तो बहुत छोटी लगती है। माता–पिता को लज्जा नहीं आई, इसे वनवास देते हुए?

उसे स्मरण हो आया, जब वह मंदोदरी का हरण करके लाया था, तब वह भी कतिपय इसी वय की थी। ये बात और है कि बाद में उसने मंदोदरी से विवाह कर लिया था और महारानी मंदोदरी भी मन–वचन–कर्म से रावण को समर्पित थी किन्तु, उससे रावण के स्वभाव में कोई परिवर्तन नहीं आया था। वह अब भी दुष्ट व अत्याचारी ही था।

पता नहीं क्यों वह देवी सीता से भेंट किए बिना ही वापस महल में लौट गया, वह भी एकदम शांत, स्थिर चित्त सा।

महारानी मंदोदरी को समझ नहीं आया कि, क्या हुआ? अभी तो महाराज इतने क्रोधित होकर गए थे। इतनी शीघ्र लौट आए, वो भी एकदम शांत! इतनी शीघ्रता से तो महाराज का क्रोध कभी शांत होते नहीं देखा।

दासियों से पूछने पर पता चला कि, महाराज गए तो क्रोध में थे किन्तु, सीता को देखकर उन्हें पता नहीं क्या हुआ, वे तो सीता को दूर से ही देखकर वापस महल लौट आए। सीता से तो मिले ही नहीं।

महारानी मंदोदरी को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने उत्सुकतावश सीता से मिलने का निश्चय किया।

महारानी मंदोदरी जब अशोक वाटिका गई तो सीताजी को देखकर उनकी आँखें नम हो आई– 'इतनी छोटी सी बच्ची और लंकेश की कैद में !'

यह देखकर महारानी को वे क्षण स्मरण हो आए, वे भी तो कतिपय इसी वय में अपहृत करके लाई गई थी।

दासियों से सीता का ध्यान रखने का कहकर त्रिजटा को देवी सीता की देखरेख के लिए नियुक्त किया।

महारानी मंदोदरी ने दासियों से पूछा– सीता के भोजन, वस्त्र व शयन की व्यवस्थाएँ ठीक तो है?

दासियाँ– क्षमा महारानी, सीता को अशोक वाटिका में आए हुए इतना समय व्यतीत हो चुका है किन्तु, अब तक न तो भोजन किया है, न ही वस्त्र बदले है और शयन तो वह क्षणमात्र भी नहीं करती।

महारानी मंदोदरी (मन ही मन में) – हे ईश्वर! इसकी रक्षा करना।

महारानी मंदोदरी चिंतित होकर विचारने लगी, ऐसे तो सीता अधिक समय तक जीवित ही न रह पाएगी। उन्होंनें निश्चय किया कि मुझे स्वयं सीता को समझाना होगा।

महारानी मंदोदरी (सीता से बड़े स्नेह से)–थोड़ा धैर्य रखो पुत्री। स्वयं का ध्यान तो तुम्हें रखना ही होगा।

देवी सीता (अश्रुपूरित नैन)– मैं धैर्य कहाँ से लाऊँ माँ। दशानन छल से मेरा हरण कर के ले आए है। मेरे प्रभु श्रीराम को तो ज्ञात भी नहीं कि मेरे साथ क्या हुआ, मैं कहाँ हूँ, किस अवस्था में हूँ?

महारानी मंदोदरी (सहानुभूतिपूर्वक)– तो क्या तुम्हारे राम तुम्हारा पता नहीं लगा पाएँगे।

देवी सीता (दृढ़ता से)– नहीं माँ। मेरे प्रभु श्रीराम तो सर्व समर्थ है। मुझे पूर्ण विश्वास है– वे मेरा पता भी लगा लेंगे और मुझे दशानन की कैद से मुक्त भी करवा लेंगे। चाहे इसके लिए उन्हें आकाश–पाताल क्यों न एक करना पड़े।

महारानी मंदोदरी (आश्चर्य से)– क्या सच में?

देवी सीता– अवश्य ही माँ, आप स्वयं ही इसकी साक्षी होंगी।

महारानी मंदोदरी (समझाते हुए)– सीता, अपने राम के यहाँ आने तक तुम जीवित रहना चाहती हो या नहीं?

देवी सीता (दृढ़ता से)– मैं अवश्य ही जीवित रहूँगी माँ। उन्हें देखे बिना तो मैं प्राण भी त्यागने वाली नहीं।

महारानी मंदोदरी– उसके लिए तुम्हें भोजन भी करना होगा और विश्राम भी।

देवी सीता– मेरी प्रत्येक श्वांस में श्रीराम बसे है। राम–नाम जप ही मेरा भोजन है और यही मेरा विश्राम भी। आप मेरी चिंता न करें। हो सके तो दशानन को समझाएँ अन्यथा समस्त राक्षस कुल के विनाश को देखने के लिए स्वयं को सज्ज कर लें।

महारानी मंदोदरी (आवेश में)– सीता! अपनी वाणी पर संयम रखो।

देवी सीता (महारानी मंदोदरी से विनय करते हुए)– आपने मुझे पुत्री कहा है, अतः मैंने भी आपको माँ माना है। मैं तो अपना पुत्री धर्म निभाते हुए आपको सत्य से अवगत् करा रही हूँ। सोचिए, जिस परिस्थिति की कल्पना मात्र से आप सिहर उठी है, वह समय अधिक दूर नहीं है। अब भी समय है राक्षसकुल को बचा लो माँ। श्रीराम करुणानिधान है, यदि दशानन अपनी भूल स्वीकार कर लें तो वे दशानन को उनके कुकृत्यों के लिए क्षमा कर देंगे।

महारानी मंदोदरी (मन ही मन में)– दशानन और समर्पण? यह संभव नहीं। फिर भी मुझे दशानन को समझाना ही होगा। राम और सीता सामान्य मानव नहीं लगते।

उधर, रावण जो प्रतिशोध की आग में जलता हुआ सीता को सबक सिखाना चाहता था, अब उसने निर्णय लिया– नहीं! मुझे इसका हृदय जीतना चाहिए, जैसे मैंने मंदोदरी का हृदय जीता था। वैसे भी अब सीता के पास कोई और विकल्प तो है नहीं। उन तपस्वियों को कभी पता ही न चलेगा कि सीता कहाँ है और पता चल भी जाए तो दोनों वनवासी क्या ही कर लेंगे? इतना विशाल समुद्र पार कर, सेना लाकर युद्ध करना उन वनवासियों के वश की बात नहीं। हम तो वैसे भी तीनों लोकों को जीत चुके है, महादेव को कैलाश पर्वत सहित उठा चुके है, देवताओं तक को हरा चुके है तो मानवों की तो क्या ही बिसात! इन दोनों तपस्वियों ने कुछ तो ऐसे कार्य किए होंगे कि इनके पिता को इन्हें राज्य से निष्कासित करना पड़ा। इन वनवासियों को घर–परिवार एवं राज्य का सहयोग तो मिलने से रहा। स्वयं तो सेना बना नहीं सकते, हमारे भय से कोई और राजा चाहकर भी इनकी सहायता नहीं कर पाएगा। युद्ध में क्षण भर भी टिक न सकेंगे, बस ये बात सीता को समझानी होगी, चाहे उसके लिए साम–दाम–दंड–भेद कुछ भी नीति क्यों न अपनाना पड़े।

महारानी मंदोदरी (महल में दशानन से)– प्रणाम महाराज।

दशानन– आईये महारानी, आज आप कुछ चिंतित दिखाई दे रही है?

महारानी मंदोदरी– बात ही कुछ ऐसी है।

दशानन– त्रिलोक विजेता रावण की पत्नी, लंका की महारानी को चिंता में रहना शोभा नहीं देता। निःसंकोच चिंता का कारण कहिए।

महारानी मंदोदरी–एक पत्नी के रूप में आप मेरा मूल्यांकन किस प्रकार करते है महाराज?

दशानन– अर्थात्।

महारानी मंदोदरी– मैं एक आदर्श पत्नी बन पाई या नहीं?

दशानन– महारानी, आपका स्वभाव अत्यन्त विनम्र, प्रशंसनीय एवं गरिमामय है। आप मेरे प्रति मन–वचन–कर्म से समर्पित है। आपको पाकर मैं अभिभूत हूँ।

महारानी मंदोदरी– तो क्या मेरी विनती स्वीकार करेंगे?

दशानन– स्पष्ट कहो महारानी। क्या कहना चाहती हो?'

महारानी मंदोदरी– महाराज, आज मैं सीता से मिली। उससे बात करके लगा, वह सामान्य नारी नहीं है। आपसे हाथ जोड़कर विनती करती हूँ, सीता को श्रीराम को सौंप दीजिए। उसी में राक्षस कुल की भलाई है। अन्यथा भगवान शंकर भी हमें विनाश से नहीं बचा पाएँगे।

यह सुनते ही रावण क्रोधित हो उठा और उसने कहा– मंदोदरी, तुम्हारा मन काँच की भांति भंगुर क्यों है कि जरा–सा आघात लगे और टुटकर बिखर जाए । अपने मन को साहसी बनाओ। त्रिलोक विजेता रावण की पत्नी उस वनवासिनी सीता से डर गई, जो अशोक वाटिका में बंदी है। कोई सुनेगा तो हमारी हँसी उड़ाएगा। महारानी हो, महारानी की तरह व्यवहार करो।

ऐसा कहकर रावण चला गया।

महारानी मंदोदरी मन मसोस कर रह गई (मन ही मन में)– हे ईश्वर! अब आप ही दशानन को सद्बुद्धि दो।

कुछ दिनों पश्चात रावण पुनः अशोक वाटिका गया और अपने विश्वसनीय दास–दासियों की नियुक्ति कर उन्हें निर्देशित किया कि, कुछ भी करके ऐसा काम करें कि सीता का झुकाव हमारे प्रति हो, सीता के सामने हमारी

प्रशंसा करें, हमारा युद्ध कौशल कि कैसे हमने त्रिलोक को जीता, कैलाश को महादेव सहित उठाया, हमारी कठिन तपस्या। सब कुछ उसे बताएं।

दासियों ने वैसे ही किया किन्तु देवी सीता पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता, बल्कि देवी सीता के मुख पर (क्षण भर के लिए) व्यंग्य भरी मुस्कान जरूर आ जाती।

दासियाँ (आपस में)– यह सीता जब देखो तब विलाप करते रहती है, दोनों भाइयों को स्मरण करते रहती है। छोटे भाई से कटु वचन कहने के लिए बार–बार क्षमा माँगते रहती है। पर जब भी दशानन की वीर गाथाएँ सुनाते है तो व्यंग्य भरी मुस्कान हँसती है। अगर इसने दशानन के सामने ऐसा किया तो वे तुरंत ही इसका वध कर देंगे।

दासी (देवी सीता से)– हमारे महाराज क्षमा नहीं देते है, सीता। उनके सामने संभलकर व्यवहार करना अन्यथा यहीं तुम्हारी बलि दे देंगे। किन्तु सीताजी पर इसका कोई प्रभाव नहीं होता।

कुछ दिनों पश्चात रावण ने फिर से देवी सीता से भेंट करने का मन बनाया।

रावण (मन ही मन में)– देखें सीता का कुछ हृदय परिवर्तन हुआ या नहीं। यदि हमारा प्रस्ताव स्वीकार कर लेगी तो उसके लिए अच्छा होगा। उसे प्रताड़ना नहीं झेलनी पड़ेगी।

अशोक वाटिका में देवी सीता की आँखों से आँसू बह रहे है। मन में श्रीराम का स्मरण कर रही है। शरीर कृशकाय हो चला है।

दासियों ने सचेत किया– उठो सीता, देखो दशानन स्वयं तुमसे मिलने आ रहे है। तुम्हें यहाँ आए हुए इतने दिन हो गए, पर तुम्हारे साथ बंदियो जैसा व्यवहार नहीं किया जा रहा है और न ही तुम्हें प्रताड़ित किया जा रहा है। तुम्हारा विशेष ध्यान रखा जा रहा है और क्या चाहिए तुम्हें?

देवी सीता– श्रीराम चाहिए मुझे! देंगे तुम्हारे महाराज? (दासियों ने सिर पीट लिया)

दासियाँ (देवी सीता से)– हमारे महाराज बड़े दृढ़ निश्चयी है, जो वे चाहते है पाकर ही रहते है। पूरे त्रिलोक में ऐसा कुछ नहीं जिसकी दशानन ने

अभिलाषा की हो और वह उन्हें न मिली हो। तुम बड़ी सौभाग्यवती हो जो वे तुम पर अपनी कृपा बरसा रहे है। आज उनसे बहुत सोच–समझकर बात करना, सीता।

रावण–देखो सीता, हम त्रिलोक विजेता है। अबतक तुम्हें हमारी वीरता और पराक्रम के बारे में पता चल ही गया होगा। देखो, देवता भी हमारे समक्ष कुछ नहीं तो फिर मानवों की तो क्या ही बिसात। वह दोनों तपस्वी कभी यहाँ नहीं आ पाएंगे। तुम वास्तविक धरातल पर रहकर विचार करो। अब तुम्हारे लिए यही उचित है कि तुम हमारा आश्रय ले लो।

देवी सीता– उचित कहा! त्रिलोक विजेता रावण, महापराक्रमी रावण छल से किसी और की पत्नी का साधुवेश धारण कर हरण करके ले आया। यह कैसी वीरता है रावण!

रावण (क्रोध में)– देखो सीता, हमारा तुमसे या दोनों तपस्वियों से कोई बैर नहीं था। तुम तीनों हमारी अनुमति के बिना हमारे राज्य की सीमा में रहने आ गए। फिर एक दिन दोनों तपस्वियों ने हमारी बहन शूर्पणखा का उपहास किया और यहीं तुम लोगों का मन नहीं भरा तो छोटे तपस्वी (लक्ष्मण) ने हमारी बहन के नाक कान भंग कर उसे अपमानित किया और तुम लोग यहीं नहीं रुके, खर दूषण का चौदह हजार सेना सहित वध कर दिया। हमारी सीमा में इतना उत्पात मचाया तुम लोगों ने। इन सबका प्रतिशोध लेने के लिए ही तुम्हें यहाँ लाया गया है। हम राक्षस वंश के लोग जैसी क्रिया–वैसी प्रतिक्रिया के सिद्धांत पर विश्वास करते है। अतः नारी अपमान के बदले नारी का अपमान ही राक्षसवंश द्वारा किया गया न्याय होता, किन्तु तुम्हारी अवस्था देखकर केवल और केवल तुम्हारे लिए हमने इस सिद्धांत की भी तिलाजंलि दे दी। हम तुम्हें लंका की महारानी के पद पर प्रतिष्ठित करना चाहते है। पूर्व में तुम्हारे द्वारा किए गए पुण्य कर्मो के फलस्वरूप ही तुम्हें यह पद दिया जा रहा है, अतः तुम्हारें लिए यही उचित होगा कि महारानी का पद तुम सहर्ष स्वीकार कर लो।

देवी सीता (व्यंग्य से)– तुम्हारे वंश के राज्य संचालन के यह कैसे सिद्धांत, जो व्यक्ति विशेष के लिए तुम अपनी सुविधानुसार परिवर्तित कर लेते हो। हमारे अवध में राज्य संचालन के लिए नियम सब पर समान रूप से लागू होते है। राजा हो या प्रजा सब उस नियम से बंधे होते है।

मुझे तुम पर दया आती है, तुम्हारी आँखों पर मोह व अहंकार का पर्दा इस प्रकार पड़ा हुआ है कि, सत्य तुम्हें दिखाई ही नहीं देता। स्वयं को वेदों का ज्ञाता और प्रकाण्ड विद्वान कहते हो रावण, किन्तु तुम्हें इतना भी ज्ञात नहीं कि कमल केवल और केवल सूर्य के प्रकाश में ही खिलता है, ज्योतिकीट के प्रकाश में नहीं। श्रीराम के धर्म–सत्य के तीव्र तेज के समक्ष तुम ज्योतिकीट समान हो।

ध्यान से सुनों रावण, अगर शूर्पणखा के अपमान के बदले मेरा अपमान करना चाहते तो मेरे नाक कान वहीं कुटिया के बाहर भंग कर देते, अपहरण करने की क्या आवश्यकता थी। खर दूषण और चौदह हजार सेना के वध का प्रतिशोध भूल गए रावण! बस शूर्पणखा ही याद रही तुम्हें!

वास्तव में अपनी बहन के अपमान के प्रतिशोध की आड़ में तुम अपनी काम पिपासा शांत करना चाहते हो। मुझे निःसहाय, अबला समझने की भूल न करना।

वीरता तो तब होती जब तुम दोनों भाइयों से युद्ध करते। मुझे समझ आ रहा है कि तुम कैसे छल से त्रिलोक जीते हो।

प्रभु श्रीराम के समक्ष तुम कुछ नहीं हो रावण। उनकी कथनी और करनी एक है। अभी भी समय है अपनी त्रुटि सुधार लो अन्यथा अपने संपूर्ण कुल के विनाश के लिए उत्तरदायी होंगे।

रावण क्रोध पर नियंत्रण रखकर फिर से देवी सीता को समझाने की कोशिश करने लगा– देखो सीता, तुम बहुत भोली हो, रणनीति तुम समझ नहीं पाओगी। अगर तुम मेरा प्रस्ताव स्वीकार कर लोगी तो महारानी मंदोदरी को भी तुम्हारी सेवा में नियुक्त कर दूंगा अन्यथा तुम्हारी मृत्यु निश्चित है और हाँ उन दोनों तपस्वियों को भी नही छोडूंगा।

महारानी मंदोदरी यह सुनकर अवाक रह गई कि, मुझे दासी बना देंगे। मैं जो मन वचन कर्म से इनके प्रति समर्पित हूँ उसका कोई मूल्य नहीं। दशानन से और उम्मीद भी क्या की जा सकती है।

महारानी मंदोदरी (मन ही मन में)– दशानन से इस तरह बात करने का साहस तो कोई सती नारी ही कर सकती है। मुझे पुनः दशानन को

समझाना होगा कि हठ छोड़े और सीता को ससम्मान उसके पति को सौंप दें। यही राक्षस कुल के हित में है किन्तु, वह असफल ही रही।

रावण (क्रोध में, दास दासियों से)– क्यों मैंने तुमसे कहा था ना कि सीता का हृदय परिवर्तन करो, अन्यथा तुम्हारी खैर नहीं ! लगता है तुम लोग पूर्ण मन से काम नहीं कर रहे हो।

दास–दासी (गिड़गिड़ाते हुए)– क्षमा महाराज क्षमा! वह हमारी कोई बात सुनती ही नहीं। वह हर समय राम के स्मरण में ही लीन रहती है। कई बार तो दिन भर में क्षण मात्र के लिए भी नहीं हिलती, कभी लगता है कि सांस भी नहीं ले रही। ऐसा लगता है मानों मृत शरीर हो, उसे बार–बार झकझोरना पड़ता है, यह जानने के लिए कि जीवित तो है ना? हाँ, अगर राम नाम का उच्चारण करो तो तुरंत आँख खोल कर देखती है कि, कौन बोल रहा है। मात्र राम नाम पर ही प्रतिक्रिया देती है महाराज। उसे बहुत डराया धमकाया गया किन्तु, उस पर इसका कोई प्रभाव न हुआ, वह बड़ी निर्भीक है।

रावण (क्रोध में भरकर)– अगर यह बात है तो फिर अब उसे यातनाएँ देना आरंभ करों ताकि वह हमारा प्रस्ताव स्वीकार कर लें, अन्यथा हम स्वयं उसका वध कर देंगे। यह कहकर अब रावण ने बहुत ही भयानक दिखने वाली, मनुष्य को खाने वाली, रक्त पीने वाली क्रूर राक्षसियों की नियुक्ति कर दी।

वे राक्षसियाँ दिन– रात देवी सीता को घेरकर उन्हें डराती–धमकाती रहती थी। देवी सीता के सामने ही मांस–मदिरा भक्षण करती थी, उन्हें देखकर देवी सीता भय से सिहर उठती थी, किन्तु फिर भी देवी सीता उनसे एक ही बात कहती थी– देखो तुम्हें जो करना है, कर लो। भले ही मेरे टुकड़े–टुकड़े करके खा जाओ किन्तु, मैं कभी भी रावण के समक्ष समर्पण नहीं करूंगी।

(श्रीराम विचारते है)– जब देवी सीता पर रावण की साम–दाम–दण्ड–भेद नीति का कोई प्रभाव न हुआ तब रावण ने देवी सीता को धमकी दी कि अगर तुमने एक मास में आत्मसमर्पण नहीं किया तो मैं चंद्रहास खड्ग से तुम्हारे टुकड़े–टुकड़े करके खा जाऊँगा, जब इतना कहने पर भी देवी सीता ने आत्म समर्पण नहीं किया तब रावण ने क्रूरता की सारी सीमाएँ

लांघ दी। यहाँ तक कि अपनी माया के बल से हम दोनों भाइयों (राम–लक्ष्मण) के कटे शीश थाल में रखकर देवी सीता के समक्ष प्रस्तुत कर दिए किन्तु, वह दुष्ट देवी सीता का मनोबल नहीं तोड़ पाया।

लोक अपवाद, अंतर्द्वन्द्व एवं महारानी सीता का निर्णय

अग्नि परीक्षा दी मैंने, पर तुमको क्यों विश्वास नहीं।
थे ब्रह्मा भी वहाँ उपस्थित, जाकर उनसे पूछों भी।।

अग्नि परीक्षा कहकर कब तक, नारीजाति को भरमाओगे।
हर नारी दे अग्नि परीक्षा, कैसी रीत बना जाओगे।।

मानव मन चंचल होता, क्या यह भी तुमको ज्ञात नहीं।
मन कर्म वचन समर्पित जीवन, सबके वश की बात नहीं।।

गर दे दूँ मैं अग्नि परीक्षा, स्वयं राम क्या बन पाओगे।
माँ समान होती परनारी, मन में यह भाव जगा पाओगे।।

श्रीराम (मन ही मन में)–देवी सीता को बड़ा सताया गया किन्तु, उन्होंने रावण के समक्ष आत्मसमर्पण नहीं किया। यही रावण की वास्तविक पराजय थी। राम के लिए सीता ने सबकुछ ठुकरा दिया– महलों का सुख, वैभव, मान–सम्मान। यहाँ तक कि वनवास में भी वे सदैव प्रसन्न रही। वनवास के दौरान पैदल चलते समय जब उनके पैर में कांटे चुभ जाते थे और रक्त निकलने लगता था, तब भी उन्होंने अपनी पीड़ा कभी मुख से नहीं कही। कभी कोई शिकायत नहीं की। हर परिस्थिति को सहज स्वीकार किया। वनवास में उन्होंने वे सभी कार्य भी सहर्ष किए, जो राजकुमारी रहते हुए उन्हें पता भी ना होंगे। और राम उन्हें क्या दे पाया, अपमान– तिरस्कार। (अश्रु बहने लगे)

मन ही मन में– नहीं सीता तुम इसकी अधिकारिणी नहीं हो। यह अनुचित है, सीता को न्याय मिलना चाहिए। मैं गुरु वशिष्ठ से मंत्रणा करूँगा, अब वही इस समस्या का समाधान कर सकते है।

महाराज राम को सोचते– विचारते पूरी रात हो गई थी। उस रात वे क्षण–भर के लिये भी सो न सके थे। भोर होने को थी। नित्य प्रातः ही महारानी सीता उनके कक्ष में सेवार्थ आ जाती थी।

श्रीराम (मन ही मन में)– आज मुझमें देवी सीता का सामना करने का सामर्थ्य नहीं है। इस अवस्था में मुझे देखकर वे व्याकुल हो जाएँगी। नहीं–नहीं, गर्भावस्था में तो उन्हें प्रसन्न रहना चाहिए। यह विचार कर वे महारानी सीता के आगमन के पूर्व महल से प्रस्थान कर जाते है।

महारानी सीता (दास से)– महाराज कहाँ है?

दास– महारानी, वे तो प्रातः शीघ्र ही दरबार चले गए।

महारानी सीता– ओह! मेरे लिये कोई संदेश।

दास– जी नहीं, महारानी जी।

वैसे तो तीनों माताएँ तीर्थाटन के लिए गई हुई है किन्तु, श्रीराम का नियम है, वे प्रतिदिन माँ कौशल्या के कक्ष में जाते है। यह सोचकर महारानी सीता, माँ कौशल्या के कक्ष में प्रविष्ट होकर कौतुहलवश दासी से पूछती है– हे सखी, महाराज आए थे?

दासी– जी नहीं महारानी। आज महाराज नहीं आए।

महारानी सीता– अरे!

वे मन ही मन विचारने लगी– ऐसा तो कभी नहीं हुआ, ऐसा कौन–सा कार्य आन पड़ा कि महाराज को क्षणभर भी समय न मिला? फिर सोचती है– दोपहर के भोजन के समय ही पता चलेगा।

उस दोपहर श्रीराम ने दरबार में ही भोजन बुलवा लिया। महारानी सीता समझ गई, अवश्य ही मेरे प्रिय महाराज के मन में कोई दुविधा है। इस संबंध में लक्ष्मणजी से पूछने पर भी उन्हें कुछ पता न चल पाया। उन्होंने कहा– भाभी, दरबार का कामकाज तो सामान्य ही है। बताने योग्य कोई विशेष प्रसंग तो नहीं है।

महारानी सीता– तो फिर भोजन दरबार में क्यों कर बुलवाया।

लक्ष्मणजी– महाराज की यही इच्छा थी।

अब महारानी सीता ने विचार किया– प्रभु जब महल में आएँगे, तब अवश्य ही बताएँगे।

किन्तु, महाराज राम तो दरबार समाप्त होने के पश्चात् शीघ्र ही गुरु वशिष्ठ से मिलने चले जाते है। सेवक गुरु वशिष्ठ को महाराज राम के आने की सूचना देते है। राज्य में जो भी बातें चल रही है, गुरु वशिष्ठ को ज्ञात है किन्तु, उन्होंने कभी महाराज से इस संबंध में चर्चा नहीं की।

गुरु वशिष्ठ के आश्रम में पहुँच कर महाराज राम ने उन्हें श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया।

गुरु वशिष्ठ– आइये महाराज, पधारिये।

महाराज राम– आपका शिष्य, आपका पुत्र राम आया है। कृपया महाराज कहकर संबोधित न करें गुरुवर।

गुरु वशिष्ठ– यह तथ्य सर्वविदित है महाराज, व्यक्ति विशेष जिन दायित्वों का पूर्ण निष्ठा से वहन करता है, वही उसकी वास्तविक पहचान होती है। उस पहचान से उसे विलग करना सर्वथा असंभव है।

महाराज राम (करबद्ध निवेदन करते हुए)– गुरुवर, आपका शिष्य राम आपसे कुछ मार्गदर्शन चाहता है।

गुरु वशिष्ठ– अवश्य। कहिए क्या बात है?

महाराज राम– गुरुवर, कहने को तो मैं ज्येष्ठ पुत्र हूँ किन्तु, हम चारों भाइयों का एक ही दिन जन्म हुआ, हम साथ गुरुकुल गए, साथ ही विवाह हुए, पर राज्याभिषेक मात्र मेरा हुआ। मेरी और पिताजी की अनुपस्थिति में भरत ने शासन प्रबन्ध भलीभाँति संभाला था। क्या ऐसा नहीं हो सकता कि भरत पुनः राज्य शासन संभाले और मैं वन में रहकर अयोध्या की सीमाओं की रक्षा करूँ।

गुरु वशिष्ठ अपने शिष्य के मन को भाँप गए– ऐसा क्यों करना चाहते हो राम।

महाराज राम– इतने वर्षों तक वन में रहने के पश्चात् मुझे और देवी सीता दोनों को वन का जीवन आनंददायी लगने लगा है। वहाँ ऋषि–मुनियों से ज्ञान भी प्राप्त होता रहता है और उनकी सेवा में असीम आनंद आता है। समय–समय पर राक्षसी वृत्तियाँ अपना वर्चस्व स्थापित करने की कोशिश करते रहती है, अतः उनका विनाश भी आवश्यक है। अभी देवी सीता गर्भवती है। उनकी अभिलाषा भी वन में जाकर कुछ समय ऋषि–मुनियों के दर्शन और सत्संग करने की है, ताकि आने वाली संतान सुसंस्कारित हो किन्तु, राजकार्य की अधिकता के कारण मैं समय नहीं निकाल पा रहा हूँ तो सोचा आपसे परामर्श ले लूँ।

वशिष्ठजी– तो बात कुछ दिनों की है। तुम निश्चिंत होकर जाओ। कुछ दिनों के लिये सारी व्यवस्थाएँ संभाल ली जाएँगी। वैसे भी तुम चारों भाई एक जैसे हो–आचार में, विचार में, व्यवहार में। अतः कुछ अंतर नहीं पड़ेगा।

श्रीराम–वही तो गुरुवर, हम चारों भाई विचार और व्यवहार में एक से है तो फिर भरत को राजा बनाया जा सकता है। माँ कैकेयी भी तो यही चाहती थी। यह तथ्य तो सर्वविदित है कि भरत मेरी प्रत्येक आज्ञा शिरोधार्य करता है, अतः मैं भरत को राजी कर लूँगा।

गुरु वशिष्ठ– मुझे पता है, राम तुम्हारे मन में क्या चल रहा है? स्पष्ट कहो।

महाराज राम (तनिक संकोच में)– देवी सीता के विषय में प्रजा में जो भी बातें हो रही है, क्या आप उससे अवगत है, गुरुवर ?

गुरु वशिष्ठ (चिंतित होकर)– हाँ ज्ञात हुआ मुझे।

महाराज राम– आप ही मार्गदर्शन करें, गुरुवर। देवी सीता ने सदैव अपना पतिव्रत धर्म निभाया है। अभी वे गर्भवती है। उनके प्रति मेरे भी तो कुछ कर्तव्य है।

गुरु वशिष्ठ– स्मरण करो राम, राज्याभिषेक के समय तुमने जो शपथ ली थी कि मैं राजधर्म को अपने व्यक्तिगत धर्म से सदैव सर्वोपरि रखूंगा। किसी भी राज्य की शक्ति उसकी सेना होती है, तुम तो स्वयं युद्ध लड़ चुके हो, अतः तुम्हें ज्ञात है कि योद्धाओं का मनोबल बनाए रखना कितना आवश्यक है। सोचो, सेना में क्या संदेश जाएगा ? तुम्हारी शपथ में तुम्हारे प्रश्न का उत्तर है, राम।

महाराज राम– गुरुवर, ऐसी युक्ति सुझाइए कि मैं और महारानी संग रह पाएं।

गुरु वशिष्ठ– उसके लिए तुम्हें प्रजा की शंका का समाधान करना होगा।

महाराज राम– लंका में विजय उपरांत देवी सीता अग्नि परीक्षा में अपनी शुचिता प्रमाणित कर चुकी है। मैं उन पर स्वयं से भी ज्यादा विश्वास करता हूँ। प्रजा महारानी सीता की पुनः अग्नि परीक्षा चाहती है, जो कि कदापि उचित नहीं। इस विषय पर आपका क्या मत है, गुरूवर?

गुरु वशिष्ठ– पुनः अग्नि परीक्षा कदापि–कदापि उचित नहीं। महारानी सीता में दैवीय गुणों का वास है। अतः उनकी अग्नि परीक्षा देखने का मात्र वही मनुष्य अधिकारी है जो या तो स्वयं राम जैसा हो अथवा राम–सीता में अनन्य श्रद्धा–विश्वास रखता हो, जैसे कि लंका विजय उपरांत अग्नि परीक्षा देखने वाले नर–वानर। महारानी पर प्रश्न उठाने वाला और शंका करने वाला कभी भी अग्नि परीक्षा देखने का अधिकारी नहीं हो सकता।

महाराज राम– मैं आपके विचारों से पूर्णतः सहमत हूँ, गुरुवर। अग्नि परीक्षा कोई मनोरंजन नहीं, जो अयोध्या के हर गली–चौराहे पर खेला जाए। प्रत्येक स्त्री में देवी सीता ढूंढने की हठ अवधवासियों को कहीं का नहीं छोड़ेगी।

गुरु वशिष्ठ– उचित कहा, राजन्।

महाराज राम– इस परिस्थिति से कैसे निपटा जाए, गुरुवर।

गुरु वशिष्ठ– संपूर्ण अयोध्या के लिए संकट की घड़ी है राजन्।

महाराज राम– अब आप ही मार्ग दिखाएँ, गुरुवर।

गुरु वशिष्ठ– तुम्हारे मन में देवी सीता के प्रति जो विश्वास है, वही विश्वास तुम्हें प्रजा के मन में भी जगाना होगा।

महाराज राम– किन्तु, कैसे गुरुवर ?

गुरु वशिष्ठ– अपने राजधर्म को निभाकर।

महाराज राम (आँखें भर आईं)– अत्यन्त कठिन है, गुरुवर।

गुरु वशिष्ठ (की भी आँखें भर आईं)– जानता हूँ पुत्र, तुम्हें तुम्हारे पूर्वज हरिश्चंद्र की कहानी तो ज्ञात ही होगी, कैसे नियति ने उनकी परीक्षा ली किन्तु, वे तनिक भी विचलित नहीं हुए।

'रघुकुल रीति सदा चली आई, प्राण जाए पर वचन ना जाई'

अब बारी तुम्हारी है, राम। अपने पूर्वजों द्वारा स्थापित मानदंडों के अनुरूप जीवन जीना है।

महाराज राम– किन्तु, प्रजा की शंका निर्मूल है, गुरुवर।

गुरु वशिष्ठ– देखो राम, समाज को मर्यादा में रखने के लिए कुछ नियम बनाए गए है। प्रत्येक व्यक्ति स्वभावतः भिन्न होता है, व्यक्ति विशेष के स्वभाव अनुसार नियम बनाना तो संभव नहीं है। अतः सबके लिए समान नियम होते है, चाहे कितनी भी विषम परिस्थिति क्यों ना हो, समाज को पतन से बचाने के लिए इन नियमों का दृढ़ता से पालन आवश्यक है।

महाराज राम– गुरुवर, देवी सीता अभी गर्भवती है, अभी उन्हें परिवार और सुरक्षा की आवश्यकता है। क्या ऐसा संभव है कि हम दोनों आपस में संबंध न रखे पर वे महल में ही रहें?

गुरु वशिष्ठ– क्या प्रजा इस पर विश्वास करेगी राम? तुम्हें क्या लगता है कि देवी सीता इस बात के लिए सहमत होंगी। प्रजा को विश्वास करना होता तो अग्नि परीक्षा को ही सच मान लेती। देखों राम, कई बार राजा प्रजा हित में कुछ निर्णय लेता है किन्तु, अगर प्रजा उस निर्णय के पक्ष में नहीं होती और राजा के बार–बार समझाने के बाद भी प्रजा उस निर्णय से संतुष्ट नहीं होती तो राजा को अपना वह निर्णय वापस लेना पड़ता है। राजा का काम है, अपने प्रत्येक निर्णय पर प्रजा को विश्वास में लेना।

वैसे मुझे पूर्ण विश्वास है, राम। महारानी सीता अत्यन्त धीरमति और विदुषी है, वे इस समस्या का समाधान अवश्य ढूँढ लेंगी।

गुरू वशिष्ठ– पुत्र, क्या तुम मुझे बता सकते हो कि, तुम्हारा वंश इक्ष्वाकु वंश क्यूँ कहलाता है ?

महाराज राम– अवश्य गुरूवर। इक्ष्वाकु का तात्पर्य ईख या गन्ना होता है। जिस प्रकार गन्ने का कोई भी अंश व्यर्थ नहीं जाता है, उसी प्रकार इक्ष्वाकु वंशियों के जीवन का प्रत्येक क्षण मानवता को समर्पित होता है, वे एक भी क्षण व्यर्थ नहीं गँवाते। जिस प्रकार गन्ना भोजन में मिठास घोलता है, उसी प्रकार इक्ष्वाकु वंशी प्रजाजन के जीवन में शांतिरूपी मिठास घोलने हेतु आजीवन समर्पित रहते है।

इक्ष्वाकु वंश के अर्थ का वर्णन करते–करते महाराज राम समझ गए कि, गुरुवर क्या कहना चाहते है।

महाराज राम– आज्ञा दें, गुरुवर।

चरण स्पर्श करते है और अश्रु छिपाते हुए निकलने लगते है।

गुरु वशिष्ठ श्रीराम के शीश पर स्नेह से हाथ रखते है, उनकी आँखों में भी आँसू है।

गुरु वशिष्ठ– समय बडा बलवान है राम, विधाता तुम्हें शक्ति दे।

धीरे–धीरे यह बात चारों भाइयों को पता चल गई। किसी की समझ में नहीं आ रहा कि इस परिस्थिति से कैसे निपटा जाए। चारों अपनी–अपनी पत्नियों को कुछ नहीं बताते किन्तु, महल से हँसी–खुशी जैसे विलुप्त सी हो गई। चारों भाई राजकार्य में व्यस्तता दिखाते हुए गुमसुम से रहने लगे।

इधर, महारानी सीता और उनकी तीनों बहनों को समझ में नहीं आ रहा कि ऐसी क्या बात है, जो रघुवंशियों की मुस्कान ही चली गई है। चारों भाइयों का भोजन भी कम हो गया है। महाराज राम, जिन्हें महारानी सीता के हाथ का मोहनभोग अत्यन्त रुचिकर है, अब महारानी द्वारा बनाए मोहनभोग को हाथ तक नहीं लगाते।

महारानी सीता को लगा, कोई अत्यन्त गंभीर विषय है, जिसने रघुवंशियों का सुख–चैन छीन लिया है। इसका निराकरण करना अत्यन्त आवश्यक है।

महारानी सीता ने अपनी विश्वसनीय दासियों को राज दरबार और नगर की बातें जानने के लिए भेजा।

राज दरबार का हाल जानकर आने वाली दासी कहने लगी– राजदरबार में तो ऐसा कुछ नहीं है महारानी। सब कुछ सामान्य है। कोई शत्रु देश या आक्रमण वाली बात नहीं है।

किन्तु नगर भ्रमण करके आने वाली दासियां व्यथित और व्याकुल नजर आई।

महारानी सीता ने उनसे एकांत में भेंट की।

महारानी सीता– सखियों, निश्चिंत होकर कहो, क्या बात है ?

(उन्होंने अपनी माँ से सीखा था कि, दासियों से सखियों की तरह व्यवहार करना चाहिए)

एक दासी (संकोचवश)– समझ में नहीं आ रहा महारानी! आपसे क्या कहें? कैसे कहें? कुछ प्रजाजन विवेकहीन हो गये है। रामराज्य की शांति, सुख और प्रसन्नता उन्हें रास नहीं आ रही। वे भुला बैठे है कि आज के दिन के लिए उन्होंने कितनी प्रतीक्षा की है, कितने तप किये है। अब जब

उस तप का फल भोगने का समय आया तो कुछ मंदबुद्धियों की बातों में आकर स्वयं का ही सर्वनाश करने पर तुले हुए है।

(कहते है– राम वनगमन के समय प्रजा ने भी ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किया। उन चौदह वर्षों में किसी का जन्म नहीं हुआ, न ही मृत्यु हुई)

महारानी सीता– अरे! पर हुआ क्या ? सब कुछ स्पष्ट कहो।

दासी रोते हुए कहने लगी– महारानी, मुझमें इतना सामर्थ्य नहीं है। क्षमा करें, मैं नहीं कह पाऊँगी।

दूसरी दासी– कहते हुए मेरा प्राणांत हो जाए तो ही अच्छा हो। मैं यह पाप नहीं कर सकती।

महारानी सीता – तो फिर तुम ही बताओ, मैं क्या करूँ? प्रजाजनों से मेरा स्नेह मातृवत् है, उनके इस व्यवहार का कारण ज्ञात होना एक माँ के लिए अत्यन्त आवश्यक है। तभी उसका निराकरण संभव है।

सभी दासियाँ लगभग बिलखते हुए– महारानी, आप हमारी भी माँ है। अपनी ममता की छाँव हमेशा हम पर बनाए रखना।

महारानी सीता– अरे, पर बताओ तो!

दासी– महारानी, प्रजा की अनुचित माँग पूरी करना चाहिए या नहीं।

महारानी सीता– क्या वह मांग नियम विरुद्ध है?

दासी– नियम विरुद्ध तो नहीं है महारानी किन्तु, अनुचित तो है।

महारानी सीता– जो नियम विरुद्ध नहीं, वह अनुचित कैसे हो गया सखी। स्पष्ट बताओ।

दासी– महारानी, ग्रंथों में कहा गया है कि ईश्वर ने संपूर्ण सृष्टि का निर्माण किया है और प्रत्येक प्राणी में ईश्वर का अंश होता है। इसी प्रकार प्रत्येक मनुष्य में भी ईश्वरीय अंश होता है, क्या आप इस बात से सहमत है?

महारानी सीता– उचित ही है।

दासी– तो क्या फिर ऐसा भी होता है कि किसी मनुष्य में ईश्वरीय अंश अधिक हो, किसी में कम ?

महारानी सीता– उचित कहा, तभी तो संत, गुरु एवं ज्ञानीजनों को साक्षात् ईश्वर रूप ही माना गया है। यहाँ तक कि समय–समय पर ईश्वर अपने संपूर्ण रूप में भी प्रकट होते रहते है।

दासी– महारानी, क्या इन सभी को सामान्य मनुष्य के लिए स्थापित मानदंडों का पालन करना होता है?

महारानी सीता– आवश्यक नहीं, वैसे तो यह मनुष्य शरीर धारण किए हुए रहते है किन्तु, इन्हें सामान्य नियमों में बांधना असंभव है और अनुचित भी।

दासी– महारानी, हम अयोध्या में अपने घर के वरिष्ठजन, अयोध्या के साधु–संत, ज्ञानीजनों से यही सुनते आए है कि महाराज राम और महारानी सीता साक्षात् परमात्मा का अवतार है, फिर अयोध्या की प्रजा आप दोनों को सामान्य मनुष्य की भांति क्यों देख रही है?

महारानी सीता (असमंजस में)– सखी, तुम जो भी कहना चाहती हो, स्पष्ट कहो।

अन्य दासी– महारानी, एक बात पूछूं?

महारानी सीता– पूछो सखी।

दासी– महारानी, सत्य क्या होता है? क्या सत्य को किसी प्रमाण की आवश्यकता होती है?

महारानी सीता– ये क्या बात हुई भला! सत्य निरपेक्ष होता है। उसे किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं। वो तो हम मनुष्य है जो विश्वास के अभाव में सत्य को प्रमाण के तराजू पर तौलते है। प्रमाण ना होने पर भी सत्य को झुठलाया नहीं जा सकता। कई बार सत्य इतना सूक्ष्म होता है कि उसे देखने के लिए नीर–क्षीर विवेक चाहिए जो हर किसी के लिए संभव नहीं।

दासी– अगर वह सूक्ष्म दृष्टि ना हो तो क्या करें?

महारानी सीता– तो फिर उन ज्ञानीजनों से परामर्श लेना चाहिए। जिनके पास सत्य को देखने की वह सूक्ष्म दृष्टि है किन्तु, उसके उपरांत भी समझ में ना आए तो उनके निर्णय को सहर्ष स्वीकार कर लेना चाहिए।

दासी– अर्थात् हमारे ज्ञानीजन, ऋषि–मुनि जो भी निर्णय ले उसे हम जड़बुद्धि मनुष्य को भी मान लेना चाहिए।

महारानी सीता– उचित कहा। इसी में सबका कल्याण है।

दासी– महारानी, ऋषि पत्नी अहिल्या अभी कहाँ है?

महारानी सीता– देवी अहिल्या महर्षि गौतम की धर्मपत्नी है। एक बार जब महर्षि संध्या के लिए आश्रम से बाहर गए हुए थे तब देवराज इंद्र महर्षि गौतम का रूप धारण करके आए और देवी अहिल्या से प्रणय निवेदन किया। देवी अहिल्या इंद्र के छलावे को पहचान न सकी और उन्होंने इस प्रणय निवेदन को स्वीकार कर लिया। कुछ समय पश्चात् जब महर्षि संध्या उपरांत पुनः कुटिया में आए तो वे स्वयं के रूप में छिपे देवराज इंद्र को तुरंत ही पहचान गये। वे देवी अहिल्या पर क्रोधित हुए और कहा– तुम मेरा रूप धारण किए इंद्र को पहचान क्यों नहीं पाई? और उन्होंने देवी अहिल्या को पाषाण प्रतिमा जैसा संवेदना शून्य हो जाने का श्राप दे दिया। तब से देवी अहिल्या पाषाण प्रतिमा की भाँति गौतम ऋषि के आश्रम में अपने उद्धार की प्रतीक्षा कर रही थी। जब श्रीराम मिथिला की ओर आ रहे थे तब मार्ग में गौतम ऋषि के आश्रम में जाकर उन्होंने उस पाषाण प्रतिमा को स्पर्श किया तो देवी अहिल्या पुनः जीवंत हो उठीं। जब यह वृतांत महर्षि गौतम को ज्ञात हुआ तब उन्होंने कहा– राम तुम पतितपावन हो। इंद्र के स्पर्श से पतित हुई अहिल्या अब तुम्हारे स्पर्श मात्र से पुनः पवित्र हो चुकी है। अतः मैं देवी अहिल्या को पुनः धर्मपत्नी के रूप में सहर्ष स्वीकार करता हूँ।

दासी– ऐसा क्यों महारानी?

महारानी सीता– प्रभु श्रीराम इतने पवित्र है कि उनके सामने कोई दोष या कलंक टिक ही नहीं सकता, वैसे ही जैसे पारस पत्थर के संपर्क में आने पर लोहा भी सोना बन जाता है और यह बात महर्षि जानते है।

दासी– जब ऋषिपत्नी अहिल्या श्रीराम के स्पर्श मात्र से पवित्र हो गई, तब आप तो श्रीराम की अर्द्धांगिनी है फिर आपकी शुचिता पर प्रश्न क्यों?

महारानी सीता(व्याकुल होकर)– ये क्या कह रही हो सखी! स्पष्ट कहो।

दासी (रोते हुए)– क्षमा महारानी, आप श्रीराम की अर्द्धांगिनी होते हुए भी पूर्व में अग्निपरीक्षा दे चुकी है। अब पुनः वही माँग क्यों?

महारानी सीता अत्यन्त कठिनाई से स्वयं को संभाल पाई। उन्हें अपने कानों पर विश्वास नहीं हो रहा था।

बरबस उनके मुख से निकला– अर्थात् !

दासी– महारानी, प्रजाजनों को सब पता है। आपका अपहरण, लंका विजय और अग्नि परीक्षा। फिर भी आप पर प्रश्न उठा रही है। यहाँ तक कि हमारे रघुवंशी तो सत्यवचनों के लिए जाने जाते है। उसमें भी प्रभु श्रीराम यदि कुछ कह दें तो वह निर्विवाद सत्य है किन्तु, फिर भी पता नही क्यों...

महारानी सीता (मन में)– सत्यमूर्ति श्रीराम के कथन पर अविश्वास! वह भी ज्ञानीजनों से परामर्श किये बिना!

अर्थात् हम प्रजा का विश्वास खो चुके है! नहीं–नहीं, यह उचित नहीं। हमें प्रजा का विश्वास पुनः प्राप्त करना ही होगा।

महारानी सीता (दासियों से)– अब तुम जाओ सखियों, महल में किसी से इसकी चर्चा ना करना।

एकांत में महारानी सीता की आँखों से अश्रुधार बह चली। वे प्रार्थना करने लगी– 'हे विधाता! अब आप ही मार्गदर्शन करो, कुछ सूझ नहीं रहा।

महारानी सीता को वह दिन स्मरण हो आया जब रावण वध के बाद पहली बार प्रभु श्रीराम से भेंट हुई थी। उनके मुख पर मुझे सकुशल देखने का संतोष तो था पर लोक अपवाद का भय, उसकी चिंता उनके मुख पर स्पष्ट झलक रही थी, तभी तो उनके कुछ कहे बिना ही मैंने इस समस्या से निपटने के लिए अग्नि परीक्षा की इच्छा व्यक्त की थी। यह वहाँ उपस्थित सभी के लिए अप्रत्याशित था। भैया लक्ष्मण तो इसके लिए तैयार ही नहीं थे। इस बात के लिए वे अपने भैया राम से अनमने भी हो गए थे।

यहाँ तक कि प्रभु श्रीराम की स्थिति तो ऐसी थी कि वे न तो हाँ कह पा रहे थे, न ही ना कह पा रहे थे। प्रभु ने अपराध बोध से ग्रस्त होकर मन ही मन में मुझसे अनेकों बार इसके लिए क्षमायाचना की थी। मेरी ओर देखने तक का साहस नहीं कर पा रहे थे। प्रकट रूप से भले ही मौन रहे, जब तक मैं अग्निकुंड से बाहर नहीं आई, सबकी साँसे थमी की थमी रहीं। सभी प्रभु राम के इस व्यवहार से स्तब्ध थे किन्तु, हम दोनों ही जानते थे कि यह करना कितना आवश्यक था किन्तु, जिस आशंका से अग्नि परीक्षा का निर्णय लिया गया था। वही आशंका आज पुनः जीवंत हो उठी है।

देवी सीता विचारने लगी– हे ईश्वर! पता नहीं कितनी और परीक्षाएँ जीवन में शेष है। हे विधाता, आपसे हाथ जोड़कर बारम्बार विनती है कि चाहे कितनी भी विषम परिस्थितियाँ हों, मुझे मेरे प्रभु श्रीराम से दूर मत करना।

महारानी सीता इस तरह की परिस्थिति आने पर उस समय के सामाजिक नियमों से भलीभांति परिचित थी। इसलिए प्रभु श्रीराम से अलग होने की कल्पना मात्र से सिहर उठी थी। उनकी तीक्ष्ण बुद्धि शीघ्र ही इस समस्या का हल ढूँढने में लग गई।

महारानी सीता अत्यन्त कुशल प्रबंधक थी, वे हर परिस्थिति का दृढ़तापूर्वक सामना करते हुए सत्य के मार्ग पर अडिग रहने के लिए जानी जाती थी, निर्णय लेते समय वे कभी भी भावुक होकर शिथिल नहीं पड़ती थी। चाहे वनवास में श्रीराम संग जाने का निर्णय हो या जब लंका में हनुमानजी ने आग्रह किया कि, माँ अगर आपकी अनुमति हो तो मैं आपको अभी यहाँ से ले चलता हूँ तब देवी सीता ने स्वयं की परवाह किए बिना आग्रह अस्वीकार कर दिया कि, यह उचित नहीं, इससे रघुवंशियों की कीर्ति धूमिल होगी। बस! एक बार उन्होंने भावुकता में निर्णय लिया था। जब कनक मृग के रूप में मायावी मारीच ने श्रीराम की–सी आवाज में लक्ष्मण से सहायता की गुहार लगाई थी कि, हे लक्ष्मण! मुझे बचाओ !

महारानी सीता (मन ही मन में)– वह स्वर एकदम मेरे प्रभु श्रीराम के स्वर सा ही था। उसे सुनकर मेरा मन उद्वेलित हो उठा था। मति ने काम करना मानों बंद सा कर दिया था। अपने प्रभु का पराक्रम, शौर्य और प्रताप मानों सब विस्मृत हो गया था। बस एक ही विचार आ रहा था कि अवश्य ही प्रभु गंभीर संकट में है। मैंने यह भी नहीं सोचा कि खरदूषण और

उनकी चौदह हजार की सेना को अकेले मारने वाले, शिव धनुष को क्षण भर में तोड़ने वाले प्रभु श्रीराम का कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकता। पता नहीं, कैसे अपने प्रभु का स्वर पहचानने में भूल कर दी।

वहीं, दूसरी ओर लक्ष्मण भैया एकदम निश्चिंत थे। उन्हें अपने पिता तुल्य बड़े भाई, अपने इष्ट पर और उनके पराक्रम पर पूर्ण विश्वास था। वह स्वर उन्होंने भी सुना था। उन्हें भी वह प्रभु श्रीराम के स्वर सा ही लगा किन्तु, उन्हें पूर्ण विश्वास था कि वे शब्द भैया के नहीं है। (जो भाई प्रत्येक संकट से अपने अनुजों की रक्षा करते आया हो, वह इस संकट में अपने अनुज को आगे कर ही नहीं सकता) ।

लक्ष्मण जी (मन ही मन में)– खर दूषण ने भी जब आक्रमण किया तो भैया ने मुझे और भाभी को दूर भेज दिया था।

लक्ष्मण जी (देवी सीता से)– कितना ही मायावी राक्षस हो, स्वयं रावण ही क्यों न हो, वह मेरे भैया के समक्ष टिक नहीं सकता और सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि, भैया स्वयं मुझे आपकी रक्षा का दायित्व सौंप कर गए है। जिसका भी सैन्य प्रशिक्षण होता है, उसे ज्ञात होता है कि युद्ध के समय सौंपे गए दायित्व का निर्वहन अनिवार्य होता है, चाहे कितनी भी विकट परिस्थिति क्यों न हो।

यहाँ वन में भी तो राक्षसों के विरूद्ध अघोषित युद्ध ही चल रहा था। जिसकी रूपरेखा भैया राम ही तय करते थे और लक्ष्मण को उसका पालन करना होता था। आज भी भैया ने एक ही दायित्व सौंपा था– चाहे कुछ भी हो जाए लक्ष्मण, तुम्हें वैदेही की रक्षा में ही संलग्न रहना है। भावुकता में आकर अपने कर्तव्य से चूकना मत। कुशल योद्धा की तरह व्यवहार करना। अपने भय, आशंका को अपने विवेक पर हावी मत होने देना।

यूँ तो दोनों भाई वन में वैदेही की सुरक्षा को लेकर अत्यन्त सजग रहते थे। किन्तु जबसे शूर्पणखा प्रसंग हुआ और उसके बाद खरदूषण का वध, तबसे और ज्यादा चौकस हो गये थे क्योंकि, दोनों को आशंका थी कि रावण शांत नहीं बैठेगा, हम पर आक्रमण अवश्य करेगा। दोनों को यह भी पता था कि रावण स्त्रियों के साथ कैसा व्यवहार करता था। इसीलिए दोनों भाई वैदेही को क्षण भर के लिए भी अकेला नहीं छोड़ते थे।

अतः जब देवी सीता ने भैया लक्ष्मण से कहा कि, ये तो प्रभु श्रीराम का स्वर है और आपको सहायता के लिए पुकार रहे है अतः आपको जाना होगा। तब उन्होंने कहा– निश्चिंत रहें भाभी माँ, अवश्य ही स्वर भैया जैसा है पर शब्द भैया के नहीं है। मैं आपको अकेले नहीं छोड़ सकता। यह वन मायावी राक्षसों से भरा पड़ा है। भैया किसी संकट में नहीं है। वह उस मायावी का वध कर आते ही होंगे।

देवी सीता (मन ही मन में)– उस समय मैं इतनी उद्विग्न हो उठी थी कि उस उद्विग्नता में, मैंने पुत्रवत् भैया लक्ष्मण को (जो मुझे मातृवत् सम्मान देते है) अत्यन्त कठोर अपशब्द कहे। प्रारंभ में तो वे नतमस्तक होकर सुनते रहे पर जब मैं उनकी सहनशीलता की सीमा रेखा लाँघ गई तो उन्हें मेरी आज्ञा मानकर कुटिया में मुझे अकेले छोड़कर जाना पड़ा। वे शब्द इतने निम्नस्तर के थे कि, जब भी याद आते है तो लज्जा हो आती है कि अपने माता–पिता समान बड़े भाई–भाभी की सेवा में हर क्षण तत्पर रहने वाले भैया लक्ष्मण ने कैसे सुने होंगे। क्रोधी स्वभाव के माने जाने वाले लक्ष्मण ने उनका प्रतिकार भी नहीं किया। मेरे हाथ जोड़कर मुझसे विनती करते रहे और मैं ! पता नहीं वो शब्द मेरे मुख से कैसे निकले। कदाचित उस समय मेरा प्राणांत हो जाता तो अच्छा होता।

अपने निश्छल, निष्कपट देवर का इतना अपमान किया मैंने। उनके हृदय को इतनी पीड़ा पहुँचाई और उसका प्रतिफल भी भोगना ही पड़ा। रावण ने मेरा हरण कर लिया।

उस प्रकरण के बाद अनेकों बार मैंने मन ही मन में भैया लक्ष्मण से क्षमायाचना की, पर कर्मफल तो भुगतना ही पड़ता है। भैया लक्ष्मण ने कभी इस पर प्रतिक्रिया तक नहीं दी, मानों उन्होंने वह सब सुना ही नहीं। न ही मेरे प्रति उनके व्यवहार में कोई परिवर्तन आया। आज भी वे मुझे भाभी माँ मात्र कहते ही नहीं है, मानते भी है किन्तु, जब भी मैं उन्हें देखती हूँ तो अपराधबोध से ग्रस्त होकर मन ही मन क्षमा माँगती रहती हूँ, प्रायश्चित भी करना चाहती हूँ किन्तु, वे तो एक छोटे बालक की भाँति है। जैसे माँ अपने बालक के प्रति कितनी ही कठोर क्यों न हो पर वो बालक अपनी माँ की गोद ही चाहता है। वैसे ही लक्ष्मण भैया भी है।

देवी सीता (मन में निश्चय करते हुए)– हे विधाता! अपने उन कठोर वचनों का दंश मैं आज तक भोग रही हूँ और पता नहीं आगे क्या–क्या भोगना है? भावुकता में मैंने वन में जो अपराध किया है, उसे सुधार तो नहीं सकती पर एक प्रण अवश्य लेती हूँ कि, पुनः भावुकता में बहकर कोई निर्णय नहीं लूँगी।

चाहे कितनी भी विकट परिस्थिति हो, अपना हर निर्णय विवेक की कसौटी पर कस कर ही लूँगी।

मन ही मन प्रार्थना करने लगी कि, हे ईश्वर! इसमें मेरी सहायता करना।

अब विदुषी वैदेही उहापोह की स्थिति से बाहर निकलकर अपने विवेक से इस परिस्थिति का समाधान खोजने में जुट गई। अब उन्हें इस समस्या का निराकरण अपने सारे दायित्वों का निर्वहन् करते हुए करना था। एक पत्नी के रूप में, रघुवंश की कुलवधु के रूप में, अयोध्या की महारानी के रूप में, मिथिला की पुत्री के रूप में। यही नहीं बल्कि अपनी अजन्मी संतान की माँ के रूप में भी। स्वयं की इच्छा का कोई स्थान नहीं था। सारे संबंधों की गरिमा बनाए रखते हुए निर्णय करना अत्यन्त दुष्कर कार्य था।

देवी सीता (मन ही मन में)– पतिदेव की ओर देखती हूँ तो रूलाई ही फूट पड़ती है । प्रभु श्रीराम मेरे बिना कैसे रह पाएँगे। वे सदैव कहते है– सीता तुमसे ही मेरा अस्तित्व है। तुम हो तो मैं हूँ। तुम्हारे बिना तो मैं अपनी कल्पना भी नहीं कर सकता। तुम्हारे बिना मुझे स्वर्ग का राज्य भी नहीं चाहिए।

वैसे तो प्रभु बहुत पराक्रमी, शौर्यवान, धीर एवं गंभीर है किन्तु, मेरे हरण के उपरांत उनकी दारूण अवस्था को स्मरण कर भैया लक्ष्मण आज भी व्याकुल हो उठते है।

भैया लक्ष्मण ने बताया था– भाभी माँ, आपसे एक ही विनती है कि कभी मेरे भैया से दूर मत होना। आपके बिना वन में उनकी हालत विवेकहीन व्यक्ति जैसी हो गयी थी। विलाप करना, पौधों से, वन्य जीवों से बात करना। उन्हें देखकर ऐसा लगता था मानों मैंने मात्र भाभी माँ को ही नही खोया बल्कि अपने पितातुल्य भैया को भी खो दिया है। उस समय अनाथ होने की जो अनुभुति थी, उससे पीड़ादायक कुछ भी नहीं हो सकता, माँ।

भविष्य में चाहे कितनी भी विकट परिस्थिति आए आप कभी भैया से अलग मत होना, सदैव संग रहना।

महारानी सीता (मन ही मन में)– मैं भी तो यही चाहती हूँ भैया लक्ष्मण, किन्तु मात्र चाहने से क्या होता है। उसके लिए भाग्य में भी लिखा होना चाहिए। हमारे धर्म में एक पति–पत्नी का ही संबंध है, जो जन्म–जन्मान्तर का माना जाता है। पति–पत्नी दोनों एक–दूसरे के मात्र गुण ही नही अपनाते वरन् दोषों को भी सहज स्वीकारते है। एक–दूसरे की कमियों के साथ जीवन निर्वाह करना सीख जाते है।

यह गृहस्थ आश्रम ही सभी पुरुषार्थों यथा धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष की प्राप्ति का साधन है एवं यही अन्य सभी आश्रमों (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास) की नींव है। मानव जीवन में ही मनुष्य को पितृ ऋण, देव ऋण, मनुष्य ऋण उतारना होता है, जो गृहस्थ आश्रम का धर्मपूर्वक पालन करते हुए ही संभव है। इसीलिए शास्त्रों में पति–पत्नी दोनों को शास्त्रोक्त मर्यादा का पालन करने की सीख दी गई है। चूंकि, स्त्रियों को घर की मर्यादा कहा जाता है, इसलिए इस मर्यादा को बनाए रखने का दायित्व स्त्रियों पर अधिक है। इसलिए वह नारी जो मन, वचन, कर्म से अपने पति को समर्पित होती है वह देवी स्वरूपा हो जाती है। वह इतनी सामर्थ्यवान् हो जाती है कि संसार की समस्त विपत्तियों से अपने पति की प्राण रक्षा कर पाती है, जैसे सत्यवान – सावित्री। देवता भी सती नारी से डरते है।

संबंध–विच्छेद की परम्परा हमारे यहाँ नहीं है, पर कुछ विशेष परिस्थितियों में जब स्त्री की शुचिता पर प्रश्नचिन्ह लगता है, तब पति को प्रकट–अप्रकट रूप से पत्नी का परित्याग करना ही पड़ता है, फिर चाहे वो प्रसन्न हो या अप्रसन्न हो। यही सामाजिक रीति–नीति है।

आज मुझ पर, अयोध्या की महारानी की शुचिता पर प्रश्न उठा है। सामाजिक न्याय के अनुरूप पति के रूप में श्रीराम को भले ही अपनी पत्नी की शुचिता पर पूर्ण विश्वास हो किन्तु, महाराज राम को महारानी सीता की शुचिता पर लगे प्रश्नचिन्ह का निराकरण करना ही होगा। पर कैसे? या तो वे प्रजा की इच्छानुसार मुझे पुनः अग्नि परीक्षा देने का आदेश दें या मेरा त्याग करें। इसके अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं . . .

भले ही श्रीराम अपनी पत्नी सीता का त्याग ना करें पर महाराज राम को अपनी महारानी का त्याग करना ही होगा, यही राजधर्म है।

इस निष्कर्ष पर पहुँचते ही महारानी सीता काँप गई। रघुवंश की कुलवधु के लिए यही उचित है।

महारानी सीता व्याकुल होकर (मन ही मन में)– पर कैसे रह पाऊँगी अपने प्रभु के बिना। मेरा तो अस्तित्व ही श्रीराम से है। मन, वचन, कर्म से श्रीराम को समर्पित हूँ। लंका में तो उनसे पुनर्मिलन की आशा ने ही जीवित रखा था। अब कैसे जीवित रह पाऊँगी। तभी उनका ध्यान अपनी अजन्मी संतान पर गया– नहीं, नहीं, मुझे ऐसा नहीं सोचना चाहिए। मेरे गर्भ में अयोध्या का भविष्य आकार ले रहा है। मुझे इसके लिए जीवन जीना होगा और अपनी संतान को प्रसन्न और संस्कारित भी करना होगा।

फिर से उन्हें रह रहकर श्रीराम का स्मरण हो आता। अभी कुछ समय पहले गर्भवती होने का समाचार सुनकर जनकपुर से माताजी–पिताजी मिलने आए थे। उन्होंने कुछ दिनों के लिए मुझे जनकपुर ले जाने के लिए श्रीराम से अनुमति माँगी। मेरे जाने की बात सुनकर ही वे इतने व्यथित हो गए थे कि पिताजी स्वयं ही मना कर गए। जब माँ सुनयना ने कहा– पहली संतान तो मायके में ही होती है। तब श्रीराम ने हाथ जोड़कर कहा– जहाँ माँ होती है, वहीं मायका होता है। तो बस उचित समय आने पर आप यहीं आ जाना तो सीता को मायका और ससुराल एक ही जगह मिल जाएगा। माँ–पिताजी दोनों हँस पड़े थे। जाते–जाते बोल गए थे– बेटी जब भी तुझे जनकपुर आना हो तो सूचित कर देना। हम लेने आ जाएँगे। वहाँ सभी तुम चारों बहनों से मिलने को अत्यधिक आतुर है।

महारानी सीता के मन में विचारों का मंथन चल रहा है– क्या करूँ, इस अवस्था में जनकपुर चली जाऊँ। नहीं, नहीं ऐसा नहीं कर सकती। ये लोक अपवाद तो वहाँ भी मेरा पीछा नहीं छोड़ेगा। मैं सीता अपने माँ–पिता का गर्व हूँ। जनकपुर का गर्व हूँ। मैं उन्हें व्यथित नहीं देख सकती।

मैं अपनी शुचिता जनमानस में कैसे साबित करूँ? पुनः अग्निपरीक्षा...?

नहीं, यह संभव नहीं। यदि ऐसा हुआ तो अयोध्या के समाज में जब भी किसी नारी की शुचिता पर संदेह होगा तो उसे अग्नि परीक्षा देनी होगी।

मैं तो दे दूँगी पर अयोध्या की अन्य स्त्रियों का जीवन दूभर हो जाएगा। प्रत्येक व्यक्ति चाहे स्वयं में कितने ही दोष हो पर वो अपनी पत्नी से सीता की सी पवित्र होने की चाह रखेगा। 'सीता' जैसी पत्नी की चाह रखने वाले को स्वयं भी तो 'राम' होना पड़ेगा, जो कि कभी संभव नहीं है। अगर श्रीराम की अनुमति होगी तो मैं पुनः अग्निपरीक्षा देने हेतु भी सज्ज हूँ किन्तु, मैं जानती हूँ श्रीराम कभी अनुचित निर्णय नहीं लेंगे।

अग्नि परीक्षा का हठ तो आम प्रजाजन के मन से निकालना ही है, चाहे उसके लिए कुछ भी त्याग क्यों न करना पड़े। तभी अयोध्या में स्त्रियों का जीवन सुरक्षित रह पाएगा।

मान लो मैं अग्निपरीक्षा दे भी दूँ, तो संपूर्ण जनमानस तो एक साथ अग्नि परीक्षा देख नहीं सकता। जो नहीं देखेगा, वो पुनः मुझ पर संदेह करेगा, ऐसे तो हमेशा कोई ना कोई मुझ पर अग्नि परीक्षा देने का दबाव बनाता रहेगा, जो उचित नहीं होगा। फिर इस लोक अपवाद का और अग्निपरीक्षा का मेरी संतान पर भी विपरीत प्रभाव पड़ेगा। उनका बचपन कुंठाग्रस्त हो जाएगा। कुंठित बचपन आगे चलकर अनेक मनोविकारों को जन्म देता है। अगर उसे राजा बना दिया गया तो वह क्रूर शासक के रूप में जाना जाएगा।

नहीं–नहीं, मुझे अपनी संतान को इन सब प्रपंचों से दूर रखकर निश्छल, सहज जीवन देना है। जो ना तो अयोध्या में संभव है, न ही जनकपुर में। मेरी संतान का विकास निर्बाध रूप से हो, इसके लिए मुझे अपनी पहचान छिपाना होगी। एक नई पहचान विकसित करनी होगी। तभी मैं अपनी संतान का उचित तरीके से पालन–पोषण कर पाऊँगी। उसमें श्रीराम के सारे गुण विकसित करने का प्रयास करूँगी। इसके लिए मुझे ऋषि–मुनियों की छत्रछाया में रहकर जीवन निर्वाह करना होगा, यही उचित है ।

वे विचारने लगी– महर्षि वाल्मीकि त्रिकालदर्शी है, उन्हें भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों कालों का ज्ञान है। जब मैं उनके समक्ष जाऊँगी तब मेरे बिना कुछ कहे ही वे मेरे सत्य से अवगत हो जाएंगे। अतः मैं उनके संरक्षण में अपना जीवन निर्वाह कर अपनी संतान का उचित पालन–पोषण कर पाऊँगी।

किन्तु वाल्मीकि आश्रम किसके साथ जाऊँगी ? विदुषी वैदेही इस विकल्प पर विचार करने लगी। उनके अनुसार ऐसे व्यक्तित्व का चयन करना होगा, जिसकी राम–सीता में निष्ठा होने के साथ ही हृदय भी मजबूत हो ताकि मुझे वन में छोड़ आने की पीड़ा को सहन करने में सक्षम हो। इसके लिए उन्हें केवल तीन व्यक्तित्व ही उचित जान पड़ते है–

पहला, भैया भरत– नहीं, उनका हृदय अत्यन्त कोमल है। वनवास के दौरान चित्रकूट में उनकी अवस्था देखकर हर कोई व्याकुल हो उठा था। माँ कौशल्या तो अत्यन्त चिंतित थी, उनके अनुसार–राम तो रघुकुल की मणि समान है, कितना भी गहन अंधकार क्यों न हो वह मणि सदैव प्रकाशित होती रहेगी। मुझे राम की चिंता नहीं है पर मेरा भरत तो दीपक की भांति है, पवन का तेज झोंका कहीं उसे बुझा न दे। अतः जिसमें भरत की सहमति हो वही निर्णय लिया जाये।

देवी सीता (मन ही मन में)– भैया भरत आज भी स्वयं को वनवास का कारण मानकर दुःखी होते रहते है। अगर उनके साथ वन गई तो इस दुःख के साथ वे जी नहीं पाएंगे। नहीं–नहीं, उनके संग वन जाना उचित नहीं।

दूसरा, भैया शत्रुघ्न– हमारे वनगमन और पिताजी के देहांत तथा भैया भरत द्वारा नंदीग्राम में ही रहने के कारण भैया शत्रुघ्न ने ही घर–परिवार एवं राज्य के प्रत्येक दायित्व का पूर्ण निष्ठा से निर्वहन किया था। अतः राजकाज से उनका ध्यान भंग करना ठीक नहीं।

तीसरा, भैया लक्ष्मण– पुनः वनगमन के लिए वीरवर लक्ष्मण ही उचित है। उनकी निष्ठा अद्वितीय होने के साथ ही वे मजबूत हृदय वाले है। अपने भैया राम के लिए वे कुछ भी करने को तत्पर रहते है। केवल वे ही इस पीड़ा के साथ अपना जीवन व्यतीत कर सकते है।

अब महारानी सीता को अपने जीवन का उद्देश्य मिल चुका था– स्वस्थ वातावरण में अपनी संतान का पालन–पोषण करना। रघुकुल के आदर्शों के अनुरूप, श्रीराम के आदर्शों के अनुरूप।

एक ओर जहाँ उसे शूरवीर और पराक्रमी होना होगा, वहीं दूसरी ओर उसे विवेकवान, धीर–गंभीर और धर्मपरायण भी होना होगा। सबसे महत्वपूर्ण

बात कि उसे श्रीराम को ही अपना आदर्श मानना होगा। श्रीराम में पूर्ण निष्ठा रखनी होगी। उनके किसी भी निर्णय (चाहे वो मुझसे संबंधित ही क्यों ना हो) पर कभी संदेह नहीं करेगा।

महारानी सीता समझती है, कभी ना कभी तो उनकी संतान को यह सब पता चलेगा, तब वह अपने पिता पर अविश्वास ना कर बैठे। इसके लिए भी उसे उचित समय आने पर विश्वास में लेना पड़ेगा। इसके लिए मुझे अयोध्या से गुप्तरूप से ही निकलना पड़ेगा। प्रजा को तो बाद में पता चल ही जाएगा, तब तक मैं अपने गंतव्य तक पहुँच चुकी होंगी। यह लोक अपवाद स्वतः ही शांत हो जाएगा। बीच–बीच में उन्हें रूलाई भी आ जाती पर मन को समझाकर इसका क्रियान्वयन कैसे संभव हो पाएगा, महारानी सीता इस सोच में पड़ गई।

प्रभु श्रीराम के हृदय की पीड़ा का अनुभव महारानी सीता के लिए असहनीय था। उन्हें लगा हम पति–पत्नी के जीवन में जो भी उतार–चढ़ाव आ रहे है, उनका सामना करने के लिए हमें मिलकर इस परिस्थिति को स्वीकार करना होगा तभी इसकी पीड़ा कम हो पाएगी।

जानती हूँ कठिन है, अत्यन्त कठिन है, पर इसके अतिरिक्त कोई अन्य उचित मार्ग दिखाई नहीं पड़ता। ऐसा सोचकर अपने मन को संयत रखते हुए हाथ जोड़कर बार–बार माँ गौरी से प्रार्थना करने लगी– माँ, आप सदैव हम पति–पत्नी पर अपना आशीर्वाद बनाए रखना। हमें कदापि शिथिल न पड़ने देना। अब आपका ही सहारा है।

इतने में तीनों बहने उनके कक्ष में आ जाती है। उन्होंने स्वयं को संभालते हुए तीनों बहनों से कहा– 'देखो बहनों, भविष्य में मेरा स्वास्थ्य पता नहीं कैसा रहे। इसलिए आज से अपितु अभी से मेरे समस्त दायित्व तुम तीनों स्वरुचि अनुसार बाँट लो, ताकि महल के समस्त कार्य सुचारू रूप से हो सकें। तीनों बहनों ने सहर्ष सहमति दे दी। महारानी सीता ने उन्हें सब विस्तार से समझाया और कहा– अब मैं दूर से तुम्हारे क्रियाकलापों का निरीक्षण करूँगी। तीनों मान गई। वे तीनों भी महारानी सीता की परछाई जैसी ही थी।

महारानी सीता ने अपने विश्वस्त दास और दासियों को बुलाया और कहा– गर्भावस्था के कारण अब मैं महाराज की सेवा कुशलतापूर्वक करने में

असमर्थ हूँ अतः आप लोग अभी तक जो मेरी सेवा में थे, अब आप सभी को महाराज की सेवा में नियुक्त करती हूँ। इस प्रकार प्रभु श्रीराम के समस्त कार्यों का दायित्व महारानी सीता ने दास–दासियों को सौंप दिया और उन्हें विस्तार से समझा भी दिया ताकि कोई भूल न हो।

यह सब करते–करते संध्या के भोजन बनाने का समय हो गया था। महारानी सीता रसोईगृह में पहुँची तो देखा तीनों बहनें मिलकर रात्रि भोजन की तैयारी कर रही थी, यह देखकर वे निश्चिंत हो गई।

आज महाराज राम के मन में अपनी महारानी के दर्शन की तीव्र उत्कण्ठा जागी । महाराज ने मध्यरात्रि में जाने का निश्चय किया क्योंकि, उनमें महारानी सीता का सामना करने का साहस नहीं था और देखे बिना रहा भी नहीं जा रहा था।

आज दिनभर में इतना मानसिक संत्रास झेलना पड़ा कि, महारानी सीता बहुत थक गई थी। जब वे अपने कक्ष में विश्राम कर रही थी तो शीघ्र ही नींद भी आ गई ।

महाराज राम, महारानी सीता के कक्ष में आकर उन्हें निहारने लगे।

महाराज राम (मन ही मन में)– कितनी सरल निश्छल है देवी सीता। मुझसे मात्र अपना साथ ही तो मांगा था। वह भी मैं नहीं दे पाया। ऐसा सोचते–सोचते उनकी आँखें भर आई और एक अश्रु बूंद महारानी के चरणों पर गिर गई, यह देखकर श्रीराम तुरंत कक्ष से बाहर निकलने को अग्रसर हुए कि तभी महारानी सीता नींद से जाग गई। वे श्रीराम को जाते हुए देखती है और अपने चरण पर गिरी अश्रु बूंद को देखकर उन्हें भी रूलाई आ जाती है। वे श्रीराम को जाने देती है।

महारानी सीता (मन ही मन में)– इस भंवर से हम दोनों का निकलना अत्यन्त आवश्यक है। इसी में सबका कल्याण है।

अगले दिन भोर से लेकर रात्रि तक सारी व्यवस्था– महल, मंदिर, पूर्वजों की पूजा, दान, हवन इत्यादि तीनों बहनों ने कुशलतापूर्वक संभाल ली।

श्रीराम की सेवा की व्यवस्था महारानी सीता द्वारा नियुक्त दास–दासियों ने संभाल ली। त्रुटिरहित व्यवस्था देख अब महारानी सीता निश्चिंत हो चली थी।

अब उन्होंने स्वर्णकार को बुलवाया और अपने सारे आभूषण देकर नवीन आभूषण बनाने को कहा।

स्वर्णकार– क्षमा महारानी, आपके पुराने आभूषण रहने दीजिए। ऐसे ही आपके नवीन आभूषण बना देता हूँ।

महारानी सीता– नहीं, इन स्वर्ण आभूषणों से ही नवीन आभूषण बनाना है।

स्वर्णकार– जो आज्ञा महारानी।

महारानी सीता ने कारीगरों को बुलवाकर अपने कक्ष को नया रूप देने की बात कही।

कारीगर– आप शीघ्र कार्य प्रारंभ करने हेतु आदेश दें महारानी।

महारानी सीता–कृपा कर शीघ्र कार्य प्रारंभ करें।

इस प्रकार महारानी ने अपने कक्ष को एक नया रूप दे दिया।

इन सभी व्यवस्थाओं के साथ ही महारानी सीता ने यह भी विचार किया कि स्वयं के लिए वल्कल वस्त्रों की व्यवस्था भी करनी है और अपने सारे राजसी वस्त्र निर्धन स्त्रियों को दान कर दिए।

इस तरह महारानी सीता स्वयं से जुड़ी कोई भी स्मृति महल में शेष नहीं रहने देना चाहती ताकि उनके प्रभु उन स्मृतियों में अटके ना रहें।

महारानी सीता की आज्ञा अनुसार नये वल्कल वस्त्र बनकर आए, उन्हें देखकर महारानी सीता को अपने पिता महाराज जनक का स्मरण हो आया। चौदह वर्ष के वनवासकाल में जब पिताजी से चित्रकूट में भेंट हुई तब मुझे वल्कल वस्त्रों में देखकर वे फूट–फूटकर रो दिए थे, यह कहकर कि– पुत्री, तुझे विवाह उपरांत विदाई के समय समस्त उपहार दिए थे, बस वल्कल वस्त्र देना ही भूल गए थे।

वल्कल वस्त्रों को हाथ में लेकर महारानी सीता भावुक हो उठी, वे मन ही मन में महाराज जनक से वार्तालाप करने लगी– जिन वस्त्रों को आप उपहार में देना भूल गए थे पिताजी, अब वही आपकी पुत्री सीता की नियति है।

समस्त दायित्वों को कुशलतापूर्वक पूर्ण करने के उपरांत महारानी सीता का अंतिम महत्वपूर्ण कार्य शेष था– अपने प्रभु श्रीराम से भेंट करना तथा अंतर्मन की बात कहना। इसके लिए सर्वाधिक साहस और धैर्य आवश्यक था। महाराज तो अपने कक्ष में आना ही छोड़ चुके थे। उन्होंने राजदरबार को ही अपना कक्ष बना लिया था। महारानी सीता ने निश्चय किया कि, आज रात महाराज से दरबार में ही भेंट करनी होगी।

श्रीराम–सीता वार्तालाप

सिया कहे श्रीराम से, अब जाना होगा वन।
हो न सके फिर अग्निपरीक्षा, यही सबके हित में रघुनंदन।।

राम सिया संग जाना चाहे, पर राजधर्म ने रोक लिया।
राजधर्म और पतिधर्म में, राजधर्म ही जीत गया।।

निज वचन निभाएँगे मिलकर, हम संग भले ही रहे न रहे।
रघुवंश रीत पर न्यौछावर, हुए राम सिया चुपके–चुपके।।

उस रात राजदरबार में–

दास– प्रणाम महाराज। महारानी आपसे भेंट करना चाहती है।

महाराज राम ने विचारा : इस समय ! प्रत्यक्षतः दास से कहा– महारानी को सम्मानपूर्वक ले आओ।

दरबार में आकर महारानी सीता– प्रणाम प्रभु।

महाराज राम (करूणा भरी दृष्टि से)– सब कुशल तो है महारानी ? इस समय तो आपको विश्राम भवन में होना चाहिए।

महारानी सीता– विश्राम की आवश्यकता तो आपको भी है महाराज। मुझे ज्ञात है, राजकीय कार्यों में आप अत्यन्त व्यस्त रहते है किन्तु, स्वयं का ध्यान तो रखना ही पड़ेगा। आप स्वस्थ रहेंगे तभी तो कुशलतापूर्वक राजधर्म निभा पाएँगे। समय पर भोजन और समय पर विश्राम तो आपको करना ही होगा, महाराज। मैं आपको लेने आई हूँ, चलिए अपने शयनकक्ष में चलकर विश्राम कीजिए।

महाराज राम– नहीं महारानी। मैं यहीं ठीक हूँ। अब महल में मेरा मन नहीं लगता।

महारानी सीता– अगर आपको मेरा आपके कक्ष में आना पसंद नहीं तो मैं नहीं आऊँगी महाराज किन्तु, इस तरह दरबार में कब तक रहेंगे। बहुत दिन हो गए आपको दरबार में रहते, यह आपके लिये उचित नहीं।

महाराज राम (व्याकुल होकर)– ये क्या कह रही हो सीते ! तुम्हीं तो मेरी प्रेरणा हो, प्राण आधार हो।

महारानी सीता– यदि यह सत्य है तो बताइए अपने प्राण से मिले आपको कितने दिन बीत गए। आपको पता है, आपको इस तरह व्यथित देखना मेरे लिए कितना पीड़ादायक है।

मैं मानती हूँ महाराज, राज्य कार्य में नित नई समस्याएँ आती है, उन समस्याओं का निराकरण करना ही राजा का कर्तव्य है, पर उन समस्याओं में राजा का स्वयं को खो देना उचित नहीं महाराज। यह न राजा के लिए उचित है, न प्रजा के लिए और न ही राज्य के लिए।

महाराज राम (अश्रुपूरित नयनों से)– समस्या ही कुछ ऐसी है देवी। मानों एक भंवर में फंस गया हूँ, बाहर निकलने का कोई मार्ग नहीं सूझ रहा। जितना प्रयास करता हूँ उतना ही डूबता जाता हूँ। रावण वध भी इतना दुष्कर न था, जितना इस समस्या से निपट पाना।

महारानी सीता (श्रीराम का हाथ अपने हाथ में लेकर)– आप स्वयं को अकेला ना समझें। भंवर में भी मैं आपके साथ हूँ।

महारानी सीता– मैं मन, वचन, कर्म से आपके प्रति समर्पित हूँ। आप ही मेरे आराध्य है। साँच को आँच क्या। अगर आप कहेंगे तो मैं प्रजा के समक्ष पुनः अग्नि परीक्षा देने को सज्ज हूँ।

महारानी सीता के मुख से पुनः अग्निपरीक्षा देने की बात सुनकर महाराज राम व्याकुल हो उठे और कातर दृष्टि से महारानी सीता की ओर अपलक निहारते रहे। फिर कुछ क्षणों के उपरांत बोले।

महाराज राम– आप अच्छी तरह जानती है देवी कि, हम दोनों पति–पत्नी सत्य और धर्म के प्रतिनिधि है। जीवन में चाहे कितनी ही कठिनाइयाँ आए, हम सदैव सत्य व धर्म के पथ पर ही अग्रसर रहेंगे और धर्मानुसार पुनः अग्नि परीक्षा कदापि उचित नहीं। जीवन में चाहे कितनी ही परीक्षाएँ देनी पड़े किन्तु, पुनः अग्नि परीक्षा संभव ही नहीं। यहाँ तक कि पुनः अग्नि परीक्षा किसी के हित में भी नहीं, किन्तु यह बात प्रजा को समझाना असंभव सा प्रतीत हो रहा है। हर मनुष्य की मनोस्थिति समान नहीं होती, हमें प्रजा के बौद्धिक स्तर पर जाकर समस्या का हल खोजना होगा।

महाराज राम– इस बारे में आपका क्या मत है, महारानी?

महारानी सीता– अत्यन्त विचार विमर्श के उपरांत मैं भी इसी निष्कर्ष पर पहुँची हूँ कि हमें प्रजा के स्तर पर ही हल खोजना होगा, क्योंकि 'यथा राजा तथा प्रजा।'

महाराज राम (अधीर होते हुए)– इसका अर्थ जानती है, महारानी।

महारानी सीता ने अश्रुपूरित नैनों से मौन स्वीकृति दे दी। फिर पूछने लगी– गुरुवर से तो मिले ही होंगे। कोई मार्ग सुझाया होगा उन्होंने।

महाराज राम– अवश्य ही देवी, वे भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचे है जिस पर हम पहुँचे है।

महारानी सीता (धैर्य बंधाते हुए)– जो भी चुनौती हमारे समक्ष उपस्थित है, हम दोनों मिलकर उसका सामना करेंगे। महाराज और महारानी के रूप में राज्य के प्रति हमारे जो भी कर्तव्य है, हम वह पूरी निष्ठा से पूर्ण करेंगे।

यह सुनकर महाराज की आँखों में आँसू आ गए। कुछ बोल नहीं पाए। कुछ क्षणों के मौन के पश्चात बड़ी कठिनाई से अवरूद्ध कण्ठ से कह पाए– तुम्हारे अतिरिक्त मुझे कुछ नहीं चाहिए, ये जीवन भी नहीं।

महारानी सीता (धीरे से)– संदेह मुझ पर है महाराज और आप स्वयं को दंडित कर रहे है।

महाराज राम (अकुलाते हुए)– हम एक ही तो है सीते।

महारानी सीता– वही तो। कोई भी व्यक्ति, परिस्थिति हमें अलग नहीं कर सकती महाराज।

महाराज राम (नम आँखों से)– बड़ी विकट परिस्थिति है महारानी। ऐसा लगता है मानों अंदर ही अंदर कोई मुझसे मेरे प्राण खींच रहा है और मैं कुछ नहीं कर पा रहा।

महारानी सीता (नम आँखों से)– जानती हूँ महाराज। कदाचित मेरी अवस्था भी ऐसी ही है।

महाराज राम– जब मैं गुरुदेव से मिला उनसे भरत को राजा बनाने की बात भी कही किन्तु, वे संतुष्ट नहीं हुए।

महारानी– आइए मेरे साथ, हम पूर्वजों के कक्ष में चलते है।

पूर्वजों के कक्ष में पूर्वजों के चित्र लगे है। उनकी ओर इंगित करके अपने प्रभु श्रीराम को स्मरण कराने लगी– देखिए प्रभु, हमारे पूर्वजों ने कितने कष्ट झेले किन्तु, सदैव सत्य पथ पर, राजधर्म पर दृढ़ रहे। महाराज रघु की ओर देखिए, महाराज दिलीप की ओर देखिए, महाराज भगीरथ की ओर देखिए, महाराज हरिश्चंद्र की ओर देखिए, यही नहीं, अपने पिता महाराज दशरथ की ओर भी देखिए।

''रघुकुल रीति सदा चली आई, प्राण जाई पर वचन न जाई''

महाराज हमें भी अपने कुलधर्म को चरितार्थ करना है। इनके बताए मार्ग का ही अनुसरण करना है। राज्याभिषेक के समय ली हुई अपनी प्रतिज्ञा स्मरण कीजिए महाराज। राजधर्म ही सर्वोपरि है महाराज।

महाराज राम– वनवास मुझे मिला था किन्तु, आप भी तो मेरे साथ वन गई थी।

महारानी सीता– एक स्त्री होने के नाते मेरे लिए पतिव्रत धर्म ही सर्वोपरि है महाराज। आप अयोध्या के महाराज है, मात्र सीता के पति नहीं। अपनी शपथ पुनः स्मरण कीजिए महाराज, जो आपने राज्याभिषेक के समय ली थी। एक राजा का स्वयं का ना तो कोई सुख होता है, ना दुःख। राजा प्रजा के सुख से सुखी और प्रजा के दुःख से दुःखी होता है। राजा का एक ही संबंध होता है, वो है प्रजा से संबंध। अन्य सब संबंध बाद में आते है।

महारानी सीता (संकोचपूर्वक)– रघुवंश की कीर्ति धूमिल होने का कारण मैं हूँ और यह मेरे लिए असहनीय है महाराज।

महाराज राम– किन्तु आप निर्दोष है, देवी।

महारानी सीता– ये बात हम जानते है महाराज, प्रजा नहीं।

महाराज राम– किन्तु, देवी आपको अभी विशेष देखभाल की आवश्यकता है। क्या ऐसा नहीं हो सकता कि आप महल में ही रहें। मैं आपसे प्रत्यक्षतः कोई संबंध नहीं रखूँगा किन्तु, कम से कम आँखों के सामने तो रहेंगी।

महारानी सीता– चलिए, मैं आपकी बात मान लेती हूँ किन्तु, इससे प्रजा में क्या संदेश जाएगा महाराज। प्रजा अगर हम पर विश्वास करती तो यह बात ही नहीं उठती। आने वाली संतान के विषय में भी सोचिए महाराज। जब वह बड़ी होगी तो क्या ये सब बातें उसे पीड़ा नहीं पहुँचाएंगी। उसका बचपन कुंठा और अवसादग्रस्त नहीं हो जाएगा?

महारानी सीता (महाराज का हाथ अभी भी महारानी के हाथ में है)– हम दोनों ही इस समस्या का हल जानते है महाराज। हमें संयम से काम लेना होगा।

(अयोध्या के महाराज और महारानी की आँखें भर आई)

महाराज राम (अवरूद्ध कण्ठ से)– बहुत कठिन है, सीते।

महारानी सीता– जानती हूँ प्रभु किन्तु, अब समय आ गया है। आप अच्छी तरह जानते है महाराज, राजसत्ता बलिदान माँगती है– कभी स्वयं का, कभी अपने प्रियजन का।'

मैं महारानी सीता अयोध्या के राजसिंहासन पर स्वयं को न्यौछावर करने को तत्पर हूँ।

महाराज राम– मैं, रघुवंशी राम अयोध्या के राजसिंहासन पर स्वयं का बलिदान करने को सज्ज हूँ, किन्तु मैं आपका बलिदान नहीं कर सकता, इसलिए नहीं कि आप मेरी जीवनसंगिनी है, अपितु इसलिए कि आप निर्दोष, निष्कलंक है। अयोध्या के राजसिंहासन द्वारा किसी निरपराध को दंड देना उस पवित्र राजसिंहासन की प्रतिष्ठा को कलंकित करने जैसा है।

महारानी सीता– महाराज, मन में एक प्रश्न उठा है।

महाराज राम– निःसंकोच कहिए, देवी।

महारानी सीता– राजसिंहासन पर विराजमान होना राजा का अधिकार ही नहीं, अपितु दायित्व है। राजपरिवार का कोई अन्य सदस्य कभी उस पर विराजमान नहीं हो सकता, चाहे वह राजा का प्रिय ही क्यों न हो, क्या यह सत्य है महाराज?

महाराज राम– शत्–प्रतिशत सत्य कहा, देवी।

महारानी सीता– तो फिर आपने राजसिंहासन पर मुझे अपने साथ क्यों प्रतिष्ठित किया है?

महाराज राम– क्योंकि, आप मेरा वामांग है देवी। आपके साथ ही मैं पूर्ण होता हूँ।

महारानी सीता– तात्पर्य यह कि, राजसिंहासन आपसे, आपके वामांग का बलिदान मांग रहा है। आप इस ग्लानि से बाहर निकलिए कि आप निर्दोष सीता को दंड दे रहे है। आपका वामांग होने के नाते राजसिंहासन के प्रति मेरे भी कुछ दायित्व है और अब उन्हें निभाने का समय आ गया है।

महाराज राम (अश्रुपूरित नैन)– भविष्य अत्यन्त पीड़ादायक दिखाई दे रहा है, महारानी।

महारानी सीता (अश्रुपूरित नैन)– भविष्य के गर्भ में क्या छुपा है ये तो मैं नहीं जानती, पर इतना तय है कि यह पीड़ा भी हम मिलकर सहेंगे, ईश्वर हमें शक्ति दे। आप मुझे वचन दीजिए कि अपना ध्यान रखेंगे।

महाराज राम– मेरा ध्यान रखने के लिए तो पूरी अयोध्या है, किन्तु, तुम्हारा ध्यान कौन रखेगा सीते। यह सोचकर ही मेरा मन व्याकुल हो उठता है। पता है जब तुम्हें ब्याह कर लाया था तब सोचा था जीवन में सदैव तुम्हें प्रसन्न रखूँगा। चाहे जीवन में कितनी ही विकट परिस्थिति आए तुम पर कोई आँच न आने दूँगा किन्तु, मैं तुम्हें कष्ट के अतिरिक्त कुछ दे ही नहीं पाया, सीते।

महारानी सीता– आप ऐसा क्यों सोचते है महाराज। माँ गौरी है ना, वे ध्यान रखेंगी।

महाराज राम–देखो ना लाड़–प्यार से पली–बढ़ी राजकुमारी को महल के सुखी जीवन के स्थान पर वनवास ही दे पाया मैं। उस पर भी लंकाहरण और वह सब कम था तो अग्निपरीक्षा? और अब यह लोक अपवाद! महाराज राम अपनी निर्दोष पत्नी महारानी सीता तक को न्याय नहीं दिला पा रहे, औरों की बात तो क्या ही कहें।

महारानी सीता– महाराज, स्मरण है वनवास के समय आपने एक बात कही थी– 'काहूँ ना कोई सुख दुःख कर दाता। निज कृत कर्म भोग सब भ्राता।'

आपने तो वनवास के कष्टमय जीवन के विषय में मुझे बताकर अपने साथ ले चलने में असमर्थता व्यक्त की थी। वह तो मैंने ही आपके साथ चलने की इच्छा जताई थी। मुझे आज भी अच्छी तरह स्मरण है, जब आप माँ कैकई के महल से चौदह वर्ष वनवास की बात सुनकर वापस आए तब भी आप एकदम शांत, स्थिरचित्त से थे, मानों कुछ हुआ ही न हो। माँ कौशल्या से मिलकर भी आपने यही कहा– माँ, पिताजी ने मुझे वन का राज्य दे दिया है। यह सुनकर माँ कौशल्या उद्विग्न होकर आपके साथ वनगमन की बात कहने लगी। तब आपने उन्हें समझाकर कहा– माँ, पति की सेवा ही नारी का परमधर्म है। अतः आप मेरे साथ वन नहीं आ सकती

और जब मैंने आपके साथ वन जाने की बात कही, तब आपको स्मरण है रघुनंदन, उस समय मैंने आपसे क्या–क्या कहा था ?

महाराज राम– हाँ सीते! उस समय तुमने कहा था कि केवल पत्नी ही पति के भाग्य का अनुसरण कर सकती है। एक नारी के लिए पतिव्रत धर्म का पालन ही आवश्यक है। पत्नी केवल सुख की ही साथी नहीं होती अपितु दुःख की भी साथी होती है। विवाह उपरांत मैंने आपके साथ जीवन के सारे सुख भोगे और अब जब जीवन के कठिन क्षणों में आपका साथ निभाने का समय आया तो मैं अपने कर्तव्य से चूक जाऊ, नहीं यह संभव नहीं। मैं तो जैसे अपने पिता के घर में रहती थी, उसी प्रकार आपके साथ वन में भी सुखपूर्वक रहूँगी। अगर आप वन में दूसरे प्राणियों की रक्षा कर सकते है तो फिर मेरी रक्षा करना कौन बड़ी बात है। मुझे वन में सुख मिले या दुःख दोनों अवस्थाओं में मैं सम रहूँगी। आपके बिना मुझे महलों का सुख तो क्या स्वर्ग का ऐश्वर्य भी नहीं चाहिए। मैं आपके वियोग में प्राण त्याग दूंगी।

श्रीराम कहने लगे कि जब इतने पर भी मैं नहीं माना तो तुमने कठोर वचनों का प्रयोग किया। वे मुझे आज भी स्मरण है– अब मेरे पिता महाराज जनक को ज्ञात होगा कि उन्होंने अपनी पुत्री का विवाह जिस पुरुष से किया था वह तो केवल तन से पुरुष है, क्रियाकलाप से तो स्त्री ही है।

अपनी पत्नी को दूसरों के भरोसे छोड़ने वाले स्त्रीधन पर जीवन निर्वाह करने वाले नट की भांति होते है।

महारानी सीता– मेरे इतना कहने पर भी आप मुझे अपने संग ले जाने के इच्छुक नहीं थे, तब मैंने आपसे कहा था, अगर आप मुझे अपने साथ चलने की अनुमति नहीं दोगे तो मैं इसी क्षण अपने प्राण त्याग दूंगी, फिर पहले मेरी चिता का अग्नि संस्कार करना तत्पश्चात वन की ओर प्रस्थान करना। क्या आपको स्मरण है रघुनंदन ?

महाराज राम ने मौन स्वीकृति दे दी।

महारानी सीता– अच्छा है, आपको स्मरण तो है कि मेरी इच्छा के कारण ही आपको मुझे अपने साथ वन ले जाना पड़ा। आपके साथ वन जाना मेरा चयन था महाराज, आपका नहीं।

जब वन में मैंने कनक मृग को देख उसे पाने की इच्छा व्यक्त की तब भैया लक्ष्मण ने तुरन्त अपनी असहमति व्यक्त कर दी थी कि ऐसे मृग का कोई अस्तित्व नहीं होता, हमें वन में विचरण करते इतने वर्ष बीत गए किन्तु ऐसा मृग आज तक दृष्टिगोचर नहीं हुआ, अवश्य ही यह कोई मायावी राक्षस है। किन्तु वहाँ भी आपने मेरी इच्छा का सम्मान करते हुए भैया लक्ष्मण से कहा कि, वैदेही ने पूरे वनवास में पहली बार कुछ मांगा है लक्ष्मण, अतः मुझे उस मृग को लेकर आना ही होगा। यदि वह मायावी राक्षस है, तब तो उसका वध करना अत्यन्त आवश्यक है, अतः दोनो ही परिस्थितियों में मेरा जाना आवश्यक है, इसलिए मुझे जाने दो। उसके पश्चात् मायावी द्वारा आपके स्वर में पुकारने पर मैं व्याकुल हो उठी और मैंने भैया लक्ष्मण को इतने कटु वचन कहे कि आज भी उन्हें स्मरण कर आत्मग्लानि हो उठती है। उन कटु वचनों को सुनकर भी लक्ष्मण भैया ने अपना धैर्य, विवेक नहीं खोया, अपने दोनों हाथ जोड़कर मुझसे विनती करते रहे और मैं! स्वयं के बारे में क्या कहूँ! एक विवेकहीन मनुष्य समान व्यवहार किया मैंने। इन सब में आपका कोई दोष नहीं है।

वे यह भी कहने लगी कि– आपके साथ मैं सदैव प्रसन्न और संतुष्ट ही रही हूँ। चाहे वो महल हो या वन और मैं ये कहूँ कि वन में, मैं आपके साथ ज्यादा प्रसन्न थी तो अतिश्योक्ति नहीं होगी। आपके साथ मुझे वन में भी कभी किसी प्रकार के अभाव का अनुभव ही नहीं हुआ। मैं तो कहती हूँ वे ही मेरे जीवन के सर्वाधिक सुखद क्षण थे और अग्निपरीक्षा के लिए भी आप स्वयं को दोष मत दीजिए क्योंकि, वह भी मेरा ही निर्णय था आपका नहीं।

महाराज राम– पर वह निर्णय तो मेरे कारण ही लिया था ना सीते।

महारानी सीता– नहीं। वह निर्णय हम सबके कल्याण के लिए था महाराज। ये बात और है कि उसका अपेक्षित परिणाम नहीं मिला।

महराज राम (व्यथित होकर)– अत्यन्त विकट परिस्थिति है, देवी।

महारानी सीता (ढांढस बंधाते हुए)– हमें इस परिस्थिति को स्वीकारना ही होगा। सामाजिक रीति–नीति के अनुकुल व्यवहार करना होगा।

महाराज राम– यह अत्यन्त कठिन है, देवी।

महारानी सीता– सरल तो मेरे लिए भी नहीं है किन्तु, मैं मन से इस परिस्थिति को स्वीकार कर चुकी हूँ। इससे मन की पीड़ा कम हो जाती है। आपके हृदय की पीड़ा मुझसे देखी नहीं जाती। आपसे अनुरोध है कि आप भी इसे स्वीकार कर लीजिए, तभी हम अपने धर्म का उचित निर्वाह कर पाएँगे।

महारानी सीता– आपको स्मरण है रघुनंदन, वनवासकाल में दंडकारण्य में राक्षसों के अत्याचारों से त्रस्त ऋषि–मुनियों ने जब अपनी व्यथा आपको बताई थी तब आप दोनों वीरों (राम–लक्ष्मण) ने ऋषियों की रक्षा हेतु राक्षसों का विनाश करने की प्रतिज्ञा की थी, उस समय मेरे मन में संशय उत्पन्न हो गया था और मैंने आपसे कहा था कि– प्रभु हमें वनवासकाल में तपस्वी धर्म का ही निर्वाह करना चाहिए अर्थात् हमें मन, वाणी, इंद्रियों का संयम कर ईश आराधना तथा अहिंसा धर्म का पालन करना चाहिए। अभी मुझे आपका क्षत्रिय धर्म (जो दूसरे प्राणियों की हिंसा की अनुमति देता है) का पालन उचित नहीं जान पड़ता। संकट में पड़े प्राणियों की रक्षा के लिए धनुष धारण करना उचित है किन्तु, बिना बैर के दंडकारण्यवासी राक्षसों का वध उचित नहीं।

तब आपने कहा था– देवी! धर्म का मर्म अत्यन्त सूक्ष्म है। अभी–अभी आपने कहा कि संकट में पड़े प्राणी की रक्षा होनी चाहिए। दंडकारण्य में रहने वाले ऋषि–मुनियों के प्राण संकट में है। ये राक्षस इन्हें मारकर खा जाते है और यज्ञ में भी विघ्न डालते है। इसी कारण मैंने और लक्ष्मण ने ऋषियों की रक्षा करने का संकल्प लिया है और आप अच्छी तरह जानती है कि मैं अपने प्राण त्याग सकता हूँ, यहाँ तक कि आपका एवं लक्ष्मण का भी त्याग कर सकता हूँ किन्तु, अपना संकल्प कदापि नहीं छोड़ सकता।

आपकी बातें सुनकर मैं अत्यन्त गौरवान्वित हो उठी थी कि, मेरे पति धर्म के सूक्ष्मतम से सूक्ष्मतम स्वरूप को भी जानते है। आज भी हमारे समक्ष एक नया धर्मसंकट उपस्थित है और हमें उसका उचित निराकरण करना ही होगा।

कुछ क्षणों के मौन के पश्चात . . . . .

महारानी सीता (बहुत साहस जुटाकर)– आने वाली संतान के कल्याण के लिए मुझे ऋषि–मुनियों के दर्शन, सत्संग करना है महाराज। इसके लिए आपकी अनुमति चाहती हूँ।

महाराज राम के आँसू झरने लगे, बड़ी देर बाद अत्यन्त कठिनाई से बोल पाए– कब जाना है ?

महारानी सीता (अश्रुपूरित नैन)– जब आप कहें, मैं लक्ष्मण भैया के साथ जाना चाहती हूँ।

(महारानी सीता पूर्व में ही इस विकल्प पर विचार कर चुकी)

महाराज राम– जैसा आप उचित समझे, देवी।

प्रस्थान का दिन ना तो श्रीराम बता पाए ना देवी सीता पूछ पाई किन्तु, श्रीराम की करुण अवस्था देख देवी सीता ने निश्चय किया कि इस विषय में वे स्वयं ही भैया लक्ष्मण से चर्चा करेंगी।

महारानी सीता का
पुन: वन गमन

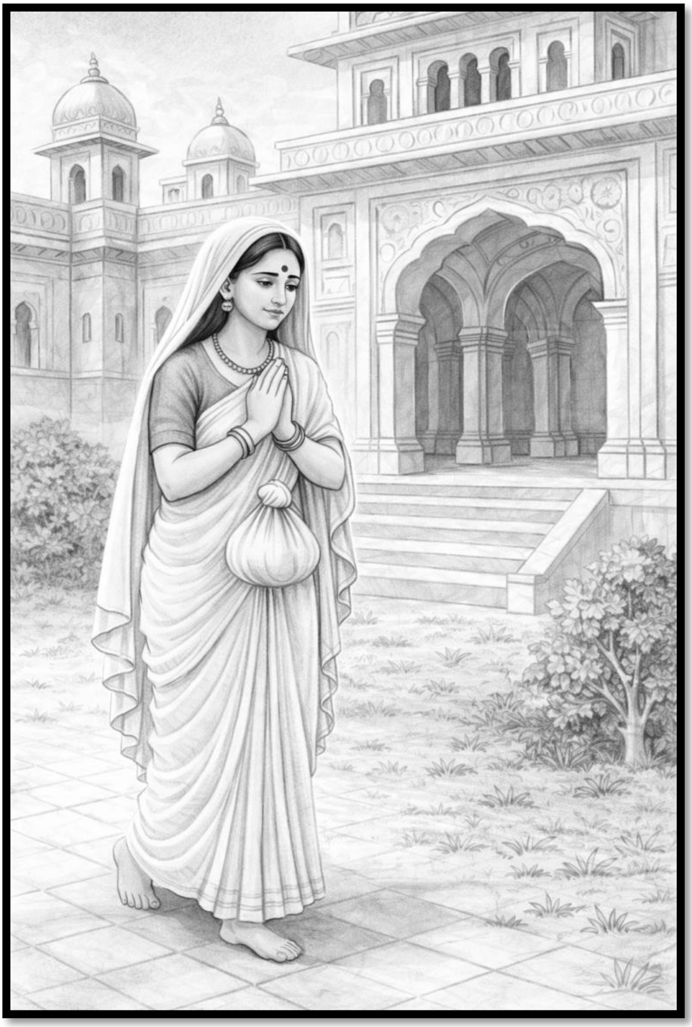

राम सियामय, सिया राममय, फिर भी साथ नहीं रह पाए।
विधना तेरे लेख निराले, मन की पीर कही न जाए।।

अगले दिन महारानी सीता ने लक्ष्मणजी को बुलाया और उनसे वन में ऋषि–मुनियों के दर्शन, सत्संग की इच्छा व्यक्त की।

लक्ष्मणजी– कब चलना है, भाभी माँ?

महारानी सीता– कल भोर होने से पूर्व ।

लक्ष्मणजी– जो आज्ञा भाभी माँ। तीन–चार दिवस का प्रबंध कर लेता हूँ।

महारानी सीता ने नम आँखों से मौन स्वीकृति दे दी।

लक्ष्मणजी जाने लगे तो, महारानी सीता ने उनसे कहा– भैया, महाराज की अनुमति तो पूर्व में ही प्राप्त कर चुकी हूँ अतः अभी उन्हें विश्राम ही करने देना। आजकल वे अत्यन्त व्यस्त रहते है। प्रातः वनगमन के पूर्व ही सूचित करना।

लक्ष्मणजी–जो आज्ञा भाभी माँ।

लक्ष्मणजी उत्साहपूर्वक यात्रा की व्यवस्था में जुट गए।

लक्ष्मणजी (मन में)– पिछली बार भाभी माँ को वनवास में चौदह वर्ष तक पथरीली और कंटीली भूमि पर पैदल ही चलना पड़ा था। अब ऐसा कदापि नहीं होगा। अयोध्या की महारानी सत्संग के लिए वन जा रही है, सभी व्यवस्थाएँ ऐसी होनी चाहिए कि इस बार का वन भ्रमण उनके लिए अविस्मरणीय आनंददायी अनुभव हो।

लक्ष्मणजी ने सेनापति का दायित्व समझते हुए महारानी की सुरक्षा के लिए पर्याप्त सैन्य टुकड़ी नियुक्त की, सर्वसुविधायुक्त राजरथ का निर्माण करवाया, सेवा के लिए दास–दासी, भोजन बनाने के लिए पूरी व्यवस्था और स्वास्थ्य को ध्यान में रखते हुए वैद्य। इस प्रकार सूक्ष्मता से लक्ष्मणजी ने समस्त प्रबंध किये।

इन्हीं सब कारणों से महाराज से लक्ष्मणजी की अनौपचारिक भेंट न हो सकी।

अगले दिन भोर होने से पूर्व लक्ष्मणजी ने सभी व्यवस्थाएँ सुनिश्चित करके महारानी सीता को सूचित किया कि माँ सभी व्यवस्थाएँ पूर्ण हो चुकी है, हम वनगमन के लिए तैयार है।

महारानी सीता (प्रार्थनारत)– आती हूँ, भैया।

महारानी सीता के कथनानुसार लक्ष्मणजी महाराज राम से अनुमति लेने के लिए गए।

लक्ष्मणजी– प्रणाम भैया, मैं और भाभी माँ वन के लिए प्रस्थान करना चाहते है। इस हेतु आपकी अनुमति लेने आया हूँ। हम तीन–चार दिन में लौट आएँगे। सारी व्यवस्थाएँ हो चुकी है, आप निश्चिंत रहिएगा।

यह सुनकर श्रीराम की आँखों में आँसू आ गए।

अपने भैया की अवस्था देखकर लक्ष्मणजी समझाने लगे– भैया, आप चिन्ता न करें। तीन–चार दिन की ही तो बात है।

महाराज राम ने मौन सहमति दे दी। उन्हें पता है कि अब देवी सीता नहीं आने वाली।

अपना कक्ष तो महारानी सीता पहले ही रिक्त कर चुकी थी। उनके कक्ष में मात्र सिंदूरदानी थी, जो श्रीराम ने उन्हें दी थी। वह उन्हें अत्यन्त प्रिय थी। महारानी सीता की मांग सदैव श्रीराम ही भरते थे। महारानी सीता ने आज स्वयं अपनी मांग भरी और सिंदूरदानी अपने साथ रख ली।

इतने दिनों तक तो महारानी सीता स्वयं को संभाले हुए थी, पर आज भावनाओं का ज्वार आँसुओं में बह चला। माँ सीता द्वारा यहाँ व्यतीत किया प्रत्येक पल उनकी आँखों के सामने घूमने लगा।

महारानी सीता को स्मरण हो आया– जब पहली बार मैंने माँ कौशल्या से प्रभु श्रीराम के साथ वन जाने की बात की थी तो माँ का धैर्य छूट गया था और वे फूट–फूट कर रोते हुए मुझसे कहने लगी थी– राम को वनवास मिला है पुत्री, तुझे नहीं। वन का जीवन अत्यन्त कठिन है। तुम इतनी सुकुमारी कैसे वहाँ निर्वाह कर पाओगी। मैंने महारानी सुनयना को वचन दिया है कि आपकी चारों पुत्रियों का ध्यान मैं वैसे ही रखूँगी जैसे मैं अपनी आँखों की पुतली का रखती हूँ। आप चिंता न करें। सीता सहित चारों बहनें अयोध्या में बहुत सुख से रहेंगी। तब उन्होंनें मुझसे कहा था– पुत्री अगर तुम वन जाओगी तो मैं जनकजी और सुनयनाजी को क्या मुख दिखाऊँगी। नहीं–नहीं, मैं तुम्हें वन जाने की अनुमति नहीं दे सकती।

अपनी फूल सी बच्ची को वन भेजने से अच्छा है, मैं भी तुम्हारे साथ ही चलूंगी।

महारानी सीता (मन में)– तब मैं अत्यन्त कठिनाई से माँ कौशल्या को समझा पाई थी।

जब वनवास से वापस अयोध्या लौटी तब माँ कौशल्या ने कहा था– पुत्री अब सदैव यहीं रहना, मेरे पास। मेरी ममता को पूर्णता तुम्हीं से मिलती है। मुझे छोड़कर अब कहीं ना जाना।

माँ कौशल्या नियति के द्वारा आज फिर छली गई। महारानी सीता ने माँ कौशल्या से मन ही मन क्षमा माँगी कि, माँ आपकी ममता को अधूरा छोड़ने के लिए अपनी सीता को क्षमा करना।

जैसे–तैसे महारानी सीता ने स्वयं को संभाला, महल में सबके जागने के पूर्व निकलना है, ऐसा विचार कर अपनी छोटी–सी पोटली उठाई और हाथों में फूल लिए महारानी सीता श्रीराम के कक्ष की ओर चल दी।

महाराज राम महारानी सीता के कदमों की आहट पहचान गए। आज उनके हृदय की पीड़ा शब्दों में नहीं कही जा सकती।

महाराज राम का मन किया कि द्वार खोलकर अपनी प्राणप्रिया सीता को जाने से रोक लूं अथवा स्वयं भी उनके साथ चले जाऊं किन्तु, राजधर्म ने रोक लिया। द्वार के इस ओर खड़े–खड़े वे द्वार के उस ओर प्रणाम करती अपनी प्राणप्रिया को अनुभव कर रहे थे। आँखों से अविरल अश्रुधारा बह चली मानों संपूर्ण विश्व को जलमग्न कर देगी।

महारानी
सीता–लक्ष्मण संवाद

निर्जन वन में छोड़के जाऊँ, यह कैसे कर पाऊँ माँ।
ब्रह्महत्या सा पापकर्म यह, करके जी नहीं पाऊँ माँ।।

सिया बिना क्या राम का जीवन, कैसे तुम्हें बताऊँ माँ।
राम जीवन आधार सिया तुम, यह कैसे बिसराऊँ माँ।।

माँ जैसी भाभी पर कैसे, मैं यह अत्याचार करूँ।
यदि तुम्हारी आज्ञा हो, निज जीवन का बलिदान करूँ।।

महारानी सीता श्रीराम के कक्ष के द्वार तक आई। वहीं से उनके चरणों का ध्यान करके पुष्प अर्पित किए और प्रणाम कर महल से प्रस्थान कर गई। धरती की पुत्री थी माँ सीता, अभी संयम, धीरज से काम लेना शेष था। मन में साहस भरा और लक्ष्मणजी के पास गई। वहाँ जाकर देखा लक्ष्मणजी का प्रबंध ऐसा था, मानों राजा युद्ध पर जा रहे हों। प्रशिक्षित सैन्य टुकड़ी, दास–दासियां, पालकी, वैद्य, मानों चलता–फिरता महल ही तैयार किया था उन्होंने।

लक्ष्मणजी ने जब महारानी सीता को वल्कल वस्त्रों में देखा तो व्याकुल हो उठे।

लक्ष्मणजी– 'ये क्या भाभी माँ। मुझे आपको इन वस्त्रों में देखकर अत्यन्त भय लगता है। आप अयोध्या की महारानी है। आपको राजसी वस्त्र ही पहनना चाहिए। आपसे करबद्ध निवेदन है कृपा कर इन वस्त्रों को बदल दीजिए।

महारानी सीता (समझाते हुए)– देखिए भैया, आश्रम में जा रहे है तो उनके जैसे वस्त्र पहने होने से आश्रमवासी घुलने–मिलने से हिचकिचाएंगे नहीं। जैसा देश–वैसा भेष।

महारानी सीता (असमंजस में)– किन्तु भैया लक्ष्मण, ये सब क्या है, इतनी व्यवस्थाएँ क्यों?

लक्ष्मणजी (उत्साहपूर्वक)– भाभी माँ, अयोध्या की महारानी गर्भावस्था में वन भ्रमण के लिए जा रही है, अतः इतनी सब व्यवस्थाएँ तो अनिवार्य है। शत्रुओं से सुरक्षा के लिए सैन्य टुकड़ी का होना भी आवश्यक है।

महारानी सीता–क्यों, अयोध्या के सेनापति लक्ष्मण अब इतने शक्तिहीन हो गए है कि अकेले मेरी रक्षा करने में स्वयं को असमर्थ पा रहे है।

लक्ष्मणजी– नहीं–नहीं भाभी माँ, ऐसी कोई बात नहीं। महाराज–महारानी के लिए इतनी व्यवस्थाएँ तो सदैव की जाती है।

महारानी सीता– पर अभी महाराज तो जा नहीं रहे है।

लक्ष्मणजी– महाराज की अनुपस्थिति में महारानी की आज्ञा ही राजाज्ञा होती है भाभी माँ।

महारानी सीता– देखिए भैया, हम वन में ऋषियों के दर्शन और सत्संग का लाभ लेने जा रहे है, अपने वैभव का प्रदर्शन करने नहीं। आपको राजा रहुगण–जड़भरत (महात्मा भरत) का प्रसंग तो स्मरण ही होगा कि एक समय जब महाराज रहुगण अपने पूरे राजसी वैभव के साथ कपिल मुनि के पास आत्मज्ञान की प्राप्ति के उद्देश्य से जा रहे थे, मार्ग में पालकी उठाने वाला एक कहार अस्वस्थ हो गया तो सेवक अज्ञानतावश जड़भरत को (जो पूर्व जन्म में महर्षि भरत थे) पालकी उठाने के लिए पकड़ लाए। उस समय जड़भरत ने महाराज रहुगण से ज्ञान की बातें कही, तब जाकर महाराज रहुगण को अपनी भूल का आभास हुआ और उन्होंने महात्मा भरत (जड़भरत) से क्षमा मांगी।

इसीलिए जब भी ज्ञान प्राप्ति के उद्देश्य से महापुरुषों की शरण में जाते है तो सामान्य मनुष्य की भांति दीन बनकर ही जाना चाहिए।

लक्ष्मणजी– किन्तु, भाभी माँ!

महारानी सीता– किन्तु–परंतु कुछ नहीं। मुझे आप पर पूर्ण विश्वास है। इन सबकी कोई आवश्यकता नहीं। मात्र हम दोनों ही वन में जाएँगे। यहाँ तक कि रथ संचालन का दायित्व भी आपका ही होगा।

लक्ष्मणजी– पर भाभी माँ, मार्ग में भोजन आदि का प्रबंध कैसे होगा। सेवकों की आवश्यकता तो होगी।

महारानी सीता– भोजन की चिंता त्याग दीजिए। उसकी व्यवस्था मैंने कर ली है। एक माँ के होते हुए उसके पुत्र की क्षुधा का निवारण न हो, यह कैसे संभव है भला।

लक्ष्मणजी– पर भाभी माँ, वैद्यजी तो जरूरी है।

महारानी सीता (मनोभावों पर नियंत्रण रखते हुए)– नहीं भैया। अब तो मुझे भी वन का अनुभव है। आप चिंता ना करें।

लक्ष्मणजी–जैसी आपकी इच्छा भाभी माँ। हमारी यात्रा के पड़ावों के बारे में कुछ बताइये माँ।

महारानी सीता– हमें महर्षि वाल्मीकि के आश्रम की ओर चलना है भैया।

लक्ष्मणजी ने महारानी सीता की आज्ञानुसार स्वयं ही रथ चलाते हुए वन की ओर प्रस्थान किया। अत्यन्त सुव्यवस्थित राजमार्ग (जिसके दोनों ओर घने कोविदार, मौलश्री, मंदार, पारिजात के वृक्ष थे) को आज अपनी महारानी के स्वागत में सजाया गया था। भोर होने को थी, अतः पक्षियों का मधुर कलरव सुनाई दे रहा था।

बहुत दिनों बाद भाभी माँ से वार्तालाप का अवसर प्राप्त हुआ तो लक्ष्मणजी निरंतर बातें किए जा रहे, पर महारानी सीता का मानों ध्यान ही नहीं था। लक्ष्मणजी समझ गए– जैसी अवस्था भैया की महल में थी वैसी ही अवस्था भाभी माँ की यहाँ है। ये दोनों एक–दूसरे से अलग रह ही नहीं सकते।

लक्ष्मणजी ने निश्चय किया कि, भाभी माँ को मुनि आश्रम में दर्शन और सत्संग के बाद शीघ्र ही वापस अयोध्या ले आऊँगा।

अब तक वे अयोध्या से बहुत दूर आ चुके थे। वन का पथरीला कंटकाकीर्ण मार्ग आरंभ हो चुका था। अतः लक्ष्मणजी ने रथ की गति धीमी कर दी ताकि भाभी–माँ को कष्ट न हो। धीरे–धीरे वन परिक्षेत्र में रथ का प्रवेश हुआ। चारों ओर हरा–भरा वन, उसमें अठखेलियां करते हिरण, नाचते मोर, कुहु–कुहु कुजती कोयल, पक्षियों का कलरव, हल्की मध्यम धूप, शीतल मंद समीर, कल–कल बहते झरने। मानों पूरी प्रकृति आज महारानी सीता के स्वागत को आतुर हो उठी थी। तभी एक शुक बोल उठा– राम राम।

यह सुनकर लक्ष्मणजी का मन प्रफुल्लित हो उठा। आनंद में भरकर वे महारानी सीता से कहने लगे– देखिए भाभी माँ, अयोध्या में मानवों की क्या कहें पक्षी भी राम नाम जपते है।

किन्तु, महारानी सीता ने मौन सहमति भर दी, कहा कुछ नहीं।

रथ चलते–चलते वन में दूर तक आ चुका था। भोजन का समय भी हो चला था। लक्ष्मणजी ने महारानी सीता से कहा– 'भाभी माँ, कहीं रुककर भोजन और विश्राम कर लें?'

महारानी सीता ने सहमति दे दी।

लक्ष्मणजी ने एक विशाल वृक्ष की छाँव में रथ रोक दिया। महारानी सीता ने भोजन पोटली निकाली, दोनों ने भोजन किया। लक्ष्मणजी ने देखा कि

भाभी माँ थोड़ी अनमनी–सी है। भोजन भी अच्छे से नहीं किया। लक्ष्मणजी ने महारानी सीता से कहा– क्या बात है भाभी माँ। आपका स्वास्थ्य तो ठीक है। मुझे आपकी चिंता हो रही है।'

महारानी सीता– नहीं भैया, ऐसी कोई बात नहीं। आप व्यर्थ ही चिंतित हो रहे है।

किन्तु लक्ष्मणजी समझ गए, कुछ तो बात है।

लक्ष्मणजी (मन ही मन)– हे विधाता! भाभी माँ की रक्षा करना।

रथ आगे बढ़ने लगा, संध्या हो चली थी। तमसा नदी के तट पर स्थित वाल्मीकि आश्रम की सीमा भी दिखाई देने लगी थी।

लक्ष्मणजी ने महारानी सीता से कहा– भाभी माँ देखो, महर्षि वाल्मीकि के आश्रम की सीमा दिखाई दे रही है। अब कुछ ही समय में हम पहुँचने वाले है।

जब आश्रम की सीमा स्पष्ट दिखने लगी तब महारानी सीता ने लक्ष्मणजी से रथ रोकने को कहा। महारानी सीता रथ से उतरी और लक्ष्मणजी से वापस अयोध्या लौट जाने को कहा।

यह सुनकर लक्ष्मणजी को गहरा आघात लगा। वे अकुलाते हुए बोले– भाभी माँ, ये आप क्या कह रही है? अभी तो आश्रम बहुत दूर है। मैं तो आपके साथ ही रहूँगा और आपको रथ से आश्रम तक ले चलूँगा और कुछ दिवस पश्चात् पुनः अयोध्या ले चलूँगा। मैं आपके बिना अयोध्या नहीं जाऊँगा।

महारानी सीता–भैया, बात समझने का प्रयास कीजिए। मैं अब वापस अयोध्या नहीं जाऊँगी।

लक्ष्मणजी (हाथ जोड़कर)– भाभी माँ, यदि आपकी सेवा में मुझसे कोई भूल हो गयी हो तो अबोध बालक समझ कर मुझे क्षमा कर दीजिए किन्तु, इतने हृदय विदारक वचन ना कहिए।

महारानी सीता– ऐसी कोई बात नहीं है भैया। आप जैसे विवेकवान पुरुष से कोई भूल हो ही नहीं सकती। मुझसे अच्छा आपको कौन जानता है?

नियति ने हमारा साथ यहीं तक लिखा था। मैं आपसे विनती करती हूँ। मेरी बात मान लीजिए।

लक्ष्मणजी (सिर झुकाए हुए)– मैं, सेनापति लक्ष्मण अपने महाराज श्रीराम की आज्ञानुसार महारानी सीता को ऋषि दर्शन, सत्संग के लिए दो–तीन दिवस के लिए ही लाया हूँ। इसके पश्चात् आपको पुनः अयोध्या चलना ही होगा। यही राजाज्ञा है। मैं अपने महाराज की आज्ञा पालन में अपने प्राण भी दे सकता हूँ।

महारानी सीता (दृढ़ता से)– सेनापति लक्ष्मण, अपने महाराज का आज्ञा पत्र मुझे दिखाइए।

लक्ष्मणजी (संकोच में भरकर)– आज्ञापत्र तो नहीं है किन्तु, जब मैं प्रातः उनसे मिलने गया था तब यह वार्तालाप हुआ था।

महारानी सीता– क्या महाराज ने स्वयं ये शब्द कहे थे सेनापति?

लक्ष्मणजी (विचार करते हुए)– ये तो मैंने महाराज से कहे थे।

महारानी सीता– स्मरण करो सेनापति, महाराज ने क्या कोई उत्तर दिया था?

लक्ष्मणजी को स्मरण हो आया कि महाराज की आँखों में अश्रु थे, कहा तो उन्होंने कुछ भी नहीं।

पुनः दोहराते हुए महारानी सीता– बताओ सेनापति, महाराज ने क्या उत्तर दिया था?

लक्ष्मणजी (सिर झुकाते हुए, धीरे से)– महाराज ने कोई उत्तर नहीं दिया था।

महारानी सीता (दृढ़ता से)– सेनापति, अभी तुमने ही कुछ क्षण पहले बताया था कि, महाराज की अनुपस्थिति में महारानी की आज्ञा ही राजाज्ञा होती है। मैं महारानी सीता आज्ञा देती हूँ इसी क्षण मुझे वन में छोड़कर अयोध्या लौट जाओ। तुम्हारा मेरी बात न मानना राजद्रोह माना जाएगा, सेनापति।

लक्ष्मणजी (विलाप करते हुए)– दया करें भाभी माँ। चाहें तो आजीवन वनवास अथवा कारावास दे दीजिए किन्तु, यह पाप मुझसे न करवाइये।

महारानी सीता–यही विधि का विधान है भैया। इस सत्य को स्वीकार करिए। जैसे हम दोनों पति–पत्नी कर चुके है।

लक्ष्मणजी– विधि ने इसके लिए मुझे ही क्यों चुना?

महारानी सीता– क्योंकि श्रीराम और सीता पर दुःखों का जो पहाड़ टूट पड़ा है, उसका भार वहन करने की क्षमता मात्र लक्ष्मण में ही है।

लक्ष्मणजी– आपको इस अवस्था में वन में अकेले छोड़ने की पीड़ा मुझे जीने नहीं देगी भाभी माँ।

महारानी सीता– बात को समझने का प्रयास कीजिए भैया। राम और सीता मिलकर भी बिना लक्ष्मण के इस दुःख को सहन नहीं कर पाएँगे। हमारा त्याग निरर्थक हो जाएगा।

लक्ष्मणजी– मुझसे यह नहीं होगा भाभी माँ।

महारानी सीता– यही तो कालचक्र है, भैया। इसके आगे सभी विवश है। इसे स्वीकार कीजिए। मुझे अब अपना शेष जीवन यहीं व्यतीत करना है। यहीं आश्रम में रहूँगी और मैं नहीं चाहती कि किसी को भी पता चले कि मैं महारानी सीता हूँ। इसलिए आपको यहीं से लौट जाने को कह रही हूँ। हमारे रथ पर रघुकुल का ध्वज है, जिसे देखकर लोग समझ जाएँगे कि मैं राजपरिवार की स्त्री हूँ, जो मैं नहीं चाहती।

लक्ष्मणजी (रोते हुए)– पर भाभी माँ, क्यों स्वयं को और मेरे भैया को दंड दे रही है। मुझसे यह नहीं होगा।

लक्ष्मणजी ने अपनी तलवार निकालकर महारानी सीता के चरणों में रख दी और कहा– भाभी माँ, तलवार उठाइए और मेरे प्राण ले लीजिए किन्तु, इतनी हृदय विदारक बात ना कहिए।

लक्ष्मणजी सिर झुकाए माँ सीता के चरणों में बैठ गए।

महारानी सीता (अश्रुपूरित नैन)– भैया प्रजाजन में जो बातें हो रही है, क्या आप उससे अवगत नहीं है ?

लक्ष्मणजी– भाभी माँ, मैंने भी पता लगाया था। समस्त प्रजा ऐसी नहीं है, केवल कुछ नगरवासी है, जो प्रपंच कर रहे है। उनके कहने भर से स्वयं को इतना बड़ा दंड मत दीजिए। वनवास काल में रावण द्वारा आपका हरण होने के उपरांत आपके वियोग में मैंने भैया को विक्षिप्त मनुष्य की भांति व्यवहार करते देखा है। आपसे हाथ जोड़कर विनती करता हूँ, भैया को पुनः उस अवस्था में मत भेजिए। आपके बिना भैया प्राणहीन हो जाएँगे। उस अवस्था में भैया को देखने से अच्छा होगा कि मैं अभी अपने प्राण दे दूँ।

महारानी सीता (रोकते हुए)– नहीं भैया, आप ऐसा कुछ नहीं करेंगे। मेरी अनुपस्थिति में आपके भैया का ध्यान आप ही को रखना है। देखिए, प्रभु श्रीराम मेरा बिछोह तो फिर भी सह सकते है किन्तु, आपके बिना तो क्षणमात्र भी जीवित नहीं रहेंगे।

स्मरण कीजिए जब रावण मेरा हरण करके ले गया तब आपके भैया विचलित जरूर हो गए थे, पर आप उनका संबल थे। उन्होंने एक बार भी प्राण देने का प्रयास नहीं किया, किन्तु जब लंका युद्ध में इंद्रजीत द्वारा आप पर शक्ति प्रहार किया गया और आप मूर्छित हो गए, तब प्रभु श्रीराम ने प्रण लिया था– यदि लक्ष्मण जीवित नहीं रहेगा तो राम भी अपने प्राण यहीं त्याग देगा।

वे लक्ष्मण को समझाते हुए कहने लगी– विवेक से काम लीजिए, भैया। आपको क्या लगता है, इतना कठिन निर्णय आपके भैया और मैंने यूँ ही ले लिया। इस समस्या से निपटने के लिए और कोई नीतिगत उपाय है ही नहीं। ''रघुवंश की कीर्ति, मेरे प्रभु श्रीराम की कीर्ति मेरे कारण धूमिल हो, यह मुझे स्वीकार नहीं। ऐसी कितनी ही सीता मैं अपने राम पर न्यौछावर करती हूँ।''

लक्ष्मणजी–कृपया पुनः विचार कीजिए भाभी माँ, अवश्य ही कोई उपाय मिल जाएगा?

महारानी सीता ने रोते–रोते मौन असहमति दे दी।

लक्ष्मणजी (अधीर होते हुए)– भैया इतने निष्ठुर कैसे हो सकते है, भाभी माँ। महाराज राम प्रजा के अर्द्ध सत्य को मानकर अपने जीवन के पूर्ण सत्य को तिलांजलि कैसे दे सकते है?

कोई भी अपने जीवन के पूर्ण सत्य से दूर रहकर कदापि सुखी नहीं रह सकता और जो स्वयं सुखी नहीं, वह प्रजा को कैसे सुखी रख पाएगा?

महारानी सीता–शांत लक्ष्मण भैया, शांत। इतने अधीर न होइए। अपनी भावनाओं को अपने विवेक पर हावी ना होने देना, ये आपसे ही सीखा है भैया।

जो लक्ष्मण दंडकारण्य में मारीच की बनावटी पुकार सुनकर भी अपने विवेक में रहा, आज वह विवेकहीन होता क्यों दिखाई दे रहा है। जानती हूँ यह अत्यन्त कठिन है भैया, किन्तु, कृपया अपनी भावनाओं पर नियंत्रण रखिए।

वनवासी श्रीराम से महाराज राम कदापि भिन्न नहीं हैं। प्रभु श्रीराम में निष्ठा रखिए। प्रभु श्रीराम को गलत समझने से सर्वाधिक पीड़ा मुझे ही होती है। सोचिए वे इतने दिनों से कितनी पीड़ा में थे किन्तु, वे मुझे भी अपनी पीड़ा कह नहीं पाए। उन्हें देखकर मैं समझ ना जाऊँ, यही विचार कर वे मेरे समक्ष भी नहीं आए। इस निर्णय को लेने में बहुत धैर्य एवं संयम की आवश्यकता थी। ये निर्णय तो लंका विजय से भी कठिन है किन्तु, परिस्थितिवश लेना पड़ा है। इसमें आपका सहयोग अत्यन्त आवश्यक है। आपके सहयोग के बिना हम अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो पाएँगे।

आप मुझे वचन दीजिए कि इस विषय में आप अपने भैया से कोई बात नहीं करेंगे। यह प्रसंग कभी भी उनके सामने प्रकट नहीं करेंगे। मेरे वनगमन का कारण उन्हें कदापि नहीं मानेंगे। वे और मैं एक ही है, तत्वतः हममें कोई अंतर नहीं।

आपको भी पता है श्रीराम होना कितना कठिन है। जीवन हर क्षण त्याग और बलिदान माँगता है। वैसी ही स्थिति श्रीराम के साथ चलने वालों की भी है। उनसे भी जीवन हर क्षण त्याग और बलिदान माँगता है। नियति

की विडंबना तो देखो, श्रीराम का साथ देने के लिए मुझे श्रीराम से ही दूर जाना पड़ रहा है।

'नियति मुझे लौकिक रूप से श्रीराम से दूर कर सकती है किन्तु, मुझे श्रीराम का कार्य करने से नहीं रोक सकती। मैं मन, वचन व कर्म से अपने प्रभु श्रीराम के प्रति समर्पित हूँ एवं जीवनपर्यंत रामकाज करती रहूँगी।

लक्ष्मणजी सिर झुकाये भाभी माँ के वचन सुनते रहे।

महारानी सीता–नियति ने अब मेरे व प्रभु श्रीराम के मार्ग अलग कर दिये है।

अब हम दोनों को अपना शेष जीवन एक–दूसरे के बिना ही व्यतीत करना है। उन्हें प्रजा का पालन–पोषण करना है और मुझे अपनी संतान का। ताकि रघुवंश को, आपको, सबको आने वाली संतान पर गर्व हो सके। ''श्रीराम से दूर रहकर मुझे श्रीराम की प्रतिमूर्ति गढ़ना है और इसके लिए मुझे तप तो करना ही होगा।''

महारानी सीता के दृढ़ निश्चय को देखकर लक्ष्मणजी काँप उठे।

लक्ष्मणजी (रोते हुए)– आपको तो परिस्थितिवश भैया एवं अयोध्या को त्यागना पड़ा। किन्तु, मेरा क्या भाभी माँ, मैं भी तो आपका पुत्र हूँ। आप मुझे क्यों छोड़ रही है? मैं भी आपके साथ वन में आपकी छत्रछाया में रहना चाहता हूँ। कृपया मुझे अपनी ममता की छाँव से वंचित मत कीजिए माँ।

महारानी सीता– नहीं भैया, आपके भी अनेक उत्तरदायित्व है। एक पुत्र के रूप में, भाई के रूप में, पति के रूप में, सेनापति के रूप में, रघुवंश के कुलदीपक के रूप में। आपको ये सभी दायित्व भलीभाँति निभाना है। यही मेरी इच्छा है और समय की मांग भी।

लक्ष्मणजी– इतनी कठोर ना बनो भाभी माँ। मुझसे जो भी भूल हुई, उसके लिए क्षमा माँगता हूँ किन्तु, ऐसा कठोर प्रण ना लो माँ।

महारानी सीता– नहीं–नहीं भैया, इसमें आपका कोई दोष नहीं। क्षमा तो मुझे आपसे माँगनी चाहिए। मारीच प्रसंग के समय जब मैंने अपने कठोर

वचनों से आपका हृदय विदीर्ण कर दिया था। अपने उन वचनों पर आज भी मुझे ग्लानि हो आती है। उन वचनों का दंश मैं आज तक भोग रही हूँ।

लक्ष्मणजी– नहीं–नहीं भाभी माँ, कृपया अपने पुत्र से क्षमायाचना कर उसे लज्जित न करें। उस समय की आपकी मनोदशा मुझे पता है, आप कितनी उद्विग्न हो उठी थी। माँ के हाथ अपने पुत्र को आशीर्वाद देते हुए ही शोभित होते है, क्षमा माँगते हुए नहीं।

महारानी सीता– मेरा आशीर्वाद तो सदैव आपके साथ रहेगा। संध्या ढलने को है, अब आपको प्रस्थान करना होगा।

लक्ष्मणजी– पर अभी भी आश्रम की सीमा बहुत दूर है। आपसे विनती करता हूँ, भाभी माँ। चारों ओर ध्यान से देखिए अत्यन्त सघन, निर्जन वन है, जहाँ सूर्य की किरणें भी प्रवेश नहीं कर पाती। दूर–दूर तक कोई मनुष्य दिखाई नहीं दे रहा है। हिंसक पशुओं की ध्वनि सुनाई दे रही है। सूर्यास्त पश्चात यह निर्जन वन अत्यन्त भयावह हो जाएगा, ऐसे में स्वयं के प्राण संकट में मत डालिए। अच्छा एक काम करते है, रथ को यहीं छिपा देता हूँ, आपको पैदल आश्रम की सीमा तक छोड़ देता हूँ, इतनी सी विनती तो स्वीकार लो, माँ।

महारानी सीता ने लक्ष्मणजी की विनती स्वीकार कर ली और वे दोनों चुपचाप आश्रम की ओर चलने लगे। लक्ष्मणजी की आँखों से अविरल अश्रुधारा बह चली। उन्हें अपने भैया राम की चिंता हो रही थी। हर ओर भैया का निस्तेज मुख ही दिखाई दे रहा था।

लक्ष्मणजी पुनः रुक गए और सीताजी के चरणों में गिर कर कहने लगे– माँ, भैया जब आपके बारे में पूछेंगे तो क्या कहूँगा?

महारानी सीता (अवरूद्ध कण्ठ से)– नहीं, वे नहीं पूछेंगे।

लक्ष्मणजी– नहीं माँ, मैंने उनसे कहा था कि हम कुछ दिवस में ही वापस आ जाएँगे।

महारानी सीता– वे जानते है कि अब मैं वापस नहीं आने वाली। आपसे बस एक ही विनती है भैया, इस बात की चर्चा आप किसी से भी नहीं करेंगे कि आपने मुझे कहाँ छोड़ा। वचन दीजिए।

लक्ष्मणजी– भैया राम से भी नहीं?

महारानी सीता– हाँ किसी से भी नहीं। अगर किसी को भी ज्ञात हो गया भैया, तो इस त्याग का कोई अर्थ नहीं रह जाएगा और हम अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो पाएँगे। यहाँ तक कि आने वाली संतान को भी अग्निपरीक्षा का दंश झेलना पड़ेगा।

लक्ष्मणजी (बिलखते हुए)– जैसा आप उचित समझे, भाभी माँ।

आश्रम की सीमा निकट आ चुकी थी। महारानी सीता ने पुनः लक्ष्मणजी को लौट जाने को कहा।

लक्ष्मणजी लौटने का साहस नहीं कर पा रहे थे। वे वहीं वृक्ष की ओट से छिपकर देखने लगे। वे चाहते थे, एक बार भाभी माँ आश्रम में सकुशल प्रवेश कर लें तो मन में संतोष बना रहेगा।

महारानी सीता ने वाल्मीकि आश्रम में प्रवेश किया और एक वृक्ष के नीचे बैठते ही उनकी आँखों से अविरल अश्रुधारा बहने लगी। अब तक वे अपने मन को संयम में रखे हुए थी किन्तु, अब वह संयम अश्रुधारा में बह चला।

उन्हें रोता देखकर वृक्ष के पीछे छिपे लक्ष्मणजी भी रोने लगे।

वाल्मीकि
आश्रम में वनदेवी

आश्रम में खुशहाली आई वनदेवी के रूप में।
वनवासियों की व्यथा मिटाई, वनदेवी के रूप में।।

गुरुमाता ने पुत्री पाई, वनदेवी के रूप में।
भगवती दर्श किए गुरुवर ने, वनदेवी के रूप में।।

आश्रम में खेलते हुए कुछ बच्चों ने वहीं वृक्ष के नीचे बैठी एक स्त्री को रोता देख शीघ्रतापूर्वक गुरुमाता को सूचित किया।

गुरुमाता (मन में)– हमारा आश्रम किसी नगर की सीमा पर नहीं है। गहन निर्जन वन में है यहाँ तक किसी स्त्री का अकेले आना अत्यन्त ही आश्चर्यजनक है। हो सकता है वन में भटक गई होगी किन्तु, अकेले कैसे? इस असमंजस में पड़े होकर उन्होंने गुरुदेव को सूचित किया।

महर्षि वाल्मीकि त्रिकालदर्शी थे। वे समझ गए कि वह स्त्री कौन है। उन्होंने गुरुमाता से कहा– उन्हें सम्मानपूर्वक यहाँ ले आओ। देखते है क्या बात है।

गुरुमाता ने आश्रम की दो कन्याओं को देवी सीता को लिवाने भेजा। दोनों कन्याओं ने देवी सीता के पास पहुँचकर उन्हें प्रणाम किया। देवी सीता ने स्वयं को संभाला और उनके साथ गुरुदेव–गुरुमाता के कक्ष में प्रवेश किया।

लक्ष्मणजी यह देखकर देवी सीता को प्रणाम कर व्यथित हृदय से अयोध्या लौट गए।

देवी सीता ने आश्रम में गुरुदेव– गुरुमाता के कक्ष में पहुँच कर उन्हें प्रणाम किया।

देवी सीता– गुरुदेव, क्या मुझे आपके आश्रम में आश्रय मिलेगा?

गुरुमाता तो देवी सीता को देखती ही रह गई। सुकोमल राजकुमारी सी, चंद्रमा समान मुख, गौरवर्ण, कमल नयन, माथे पर बड़ी सी बिंदी, मांग में सिंदुर, मुख पर निश्छलता–सौम्यता झलकती हुई सी, मानों साक्षात लक्ष्मी वल्कल वस्त्रों में आई हो। प्रथमदृष्ट्या गर्भवती भी लगती है।

गुरुदेव ने गुरूमाता से देवी सीता के जलपान की व्यवस्था करने को कहा, गुरुमाता जलपान लेने चली गई।

महर्षि वाल्मीकि और देवी सीता के अलावा कक्ष में और कोई नहीं है।

महर्षि वाल्मीकि–इस आश्रम में आपका स्वागत है महारानी...

देवी सीता– क्षमा ऋषिवर (वे महर्षि को बीच में ही टोक देती है।)– आप मुझे पहचान गए।

महर्षि वाल्मीकि– महाराज जनक की पुत्री को पहचानना कदाचित दुष्कर कार्य नहीं है, जो मात्र पाँच वर्ष की आयु में एक हाथ से सहज ही शिवधनुष उठा लेती थी।

देवी सीता– आपसे एक विनती है, महर्षि। आप तो त्रिकालदर्शी है, आपसे कुछ छिपा नहीं है। मेरे बारे में अयोध्या में जो चर्चा चल रही है, वह आपको ज्ञात ही होगी। उसी के कारण मैंने अपना शेष जीवन आपकी छत्र–छाया में बिताने का निश्चय किया है, अगर आपकी अनुमति हो तो।

महर्षि वाल्मीकि– यह हमारा सौभाग्य होगा, देवी।

देवी सीता– महर्षि, मैं आपसे विनती करती हूँ कि हो सके तो मेरी पहचान गुप्त रखी जाए ताकि मेरी आने वाली संतान को इन सब प्रपंचों से बचा सकूं। कृपा कर आप मुझे एक नई पहचान, नया नाम दे दीजिए।

महर्षि वाल्मीकि– जैसा आप उचित समझें। देवीस्वरूपा तो आप है ही, चूँकि अब वन में रहेंगी तो आज से आपका नाम 'वनदेवी' होगा।

देवी सीता हाथ जोड़कर धन्यवाद ज्ञापित करती है। इतने में गुरुमाता जलपान लाकर देवी सीता के सम्मुख रखती है।

महर्षि वाल्मीकि (गुरुमाता से)– ये वनदेवी है, घर में पति के अलावा अन्य कोई नहीं है और वे भी व्यापार के लिए कई दिनों से विदेश गए हुए है, उनका कोई समाचार नहीं। जब तक वे नहीं आ जाते तब तक ये हमारे साथ यहीं रहेंगी। आप इनके रहने का उचित प्रबंध करवा दीजिए।

गुरुमाता–जैसी आपकी आज्ञा। देवी सीता की ओर देखकर– आओ पुत्री।

पुत्री शब्द सुनकर देवी सीता (वनदेवी) की आँखें भर आई। वनदेवी भी उन्हें माँ कहकर पुकारने लगी।

वनदेवी ने आश्रम के समस्त नियमों का पालन किया। उन्हें जब दो सहायिकाएँ दी गई तो उन्होंने लेने से मना कर दिया। वे न केवल अपने समस्त कार्य स्वयं ही करती थी अपितु आश्रम के कार्यों का दायित्व भी पूर्ण निष्ठा से निभाती थी।

वनदेवी में अनिर्वचनीय प्रबंधन क्षमता थी। गुरुमाता तो पूर्णतः अपनी पुत्री पर निर्भर हो चुकी थी। गुरुमाता उनका बहुत ध्यान रखती थी। गुरुमाता क्षण भर के लिये भी उन्हें अपनी आँखों से ओझल नहीं होने देना चाहती थी।

वनदेवी का व्यक्तित्व अत्यन्त गरिमामय था। वे सबसे बड़ी शालीनता–आत्मीयता से मिलती थी। जीवन की छोटी–बड़ी समस्याओं का निदान वनदेवी कुशलतापूर्वक कर लेती थी। वे वनवासियों से भी समानुभूति रखते हुए व्यवहार करती थी। वनदेवी कभी किसी के सामने विषादग्रस्त नहीं होती थी। आश्रम के कार्यों में सदैव स्वयं को व्यस्त रखती थी। उनके बनाये भोजन में एक अलौकिक स्वाद होता था। वनदेवी को औषधियों का पर्याप्त ज्ञान होने के कारण किसी भी मनुष्य के अस्वस्थ होने पर वे स्वयं औषधि का काढ़ा बनाकर देती थी। सारे आश्रमवासी वनदेवी के आने से अत्यन्त प्रसन्न थे। आश्रम में मानों रौनक आ गई थी। वनदेवी आश्रमवासियों में इतनी घुल–मिल गई थी कि कभी किसी को यह ज्ञात ही नहीं हुआ कि ये ही अयोध्या की महारानी सीता है।

वनदेवी चोटग्रस्त वन्य प्राणियों की सेवा तब तक करती, जब तक वह स्वस्थ न हो जाता। वनदेवी का सानिध्य पाकर मानों सघन निर्जन वन भी सुहावना हो चला था। वनदेवी जब वन में विचरण करती तो शेर–शावक भी प्रेम से उनके आसपास मंडराते रहते। संपूर्ण वन मानों वनदेवी को अपनी अधिष्ठात्री मानते हुए समर्पित हो चुका था।

जिन ममतामयी व्यक्तित्व की छाँव में संपूर्ण अयोध्या को विकसित होना था। केवल कुछ जड़बुद्धि लोगों के प्रपंच के कारण अयोध्यावासी उस ममता से सदैव के लिये वंचित रह गये। रामराज्य का सुख तो उन्होंने भोगा किन्तु, सीताराम राज्य की शांति से सदैव वंचित ही रहे और इससे बड़ा दुर्भाग्य क्या हो सकता है कि वे कभी समझ ही न पाए कि उन्होंने क्या खोया है। वहीं आश्रमवासियों ने वह शांति वन में रहकर भी पाई थी जो अयोध्या के राजभवन में भी उपलब्ध नहीं थी।

उधर, लक्ष्मणजी जब अयोध्या की ओर लौटने लगे तो पग आगे ही नहीं बढ़ा पा रहे थे । एक–एक कदम आगे बढ़ने में शिथिलता का अनुभव हो रहा था। अत्यन्त कठिनाई से रथ तक पहुँचे पर रथ में चढ़ने की भी शक्ति नहीं थी। रास्ते भर उन्हें माँ सीता–भैया राम के साथ बिताए पल याद आ रहे थे। उन्हें स्वयं पर क्रोध आ रहा था कि अपने इष्ट, अपने माता–पिता समान भैया–भाभी के हृदय की पीड़ा वे समझ क्यों नही पाए। आज भोर का भैया राम का निस्तेज मुख आँखों के सामने से हटता ही नहीं था, जिसके लिये वे स्वयं को ही दोषी मान रहे थे कि आजीवन भैया–भाभी की सेवा करने का संकल्प लिया था किन्तु, उन्हें ही अलग करने का पाप कर दिया मैंने। अपनी देवी सी भाभी माँ को गर्भावस्था में निर्जन वन में छोड़ आना ब्रह्महत्या जैसा घृणित कार्य है। इस पाप से मैं कभी मुक्त नहीं हो सकता, चाहे कितने ही जन्म ले लूँ।

लक्ष्मणजी अत्यन्त कठिनाई से अयोध्या लौटे। रात हो चुकी थी। महल में प्रवेश करने का मन नहीं कर रहा था। वे स्वयं को दोषी मान रहे थे।

दूर से महल की ओर देखते हुए लक्ष्मणजी (मन में)– असंख्य मणियों एवं दीपमालाओं से दैदीप्यमान राजमहल में मानों तमस ही तमस व्याप्त हो चुका है। सूर्यवंश के सूर्य (श्रीराम) को लगा यह ग्रहण पता नहीं, कब और कैसे छूटेगा।

वे प्रार्थना करने लगे कि, हे ईश्वर! अब आपका ही सहारा है।

देवी सीता वन गमन पश्चात
राम–लक्ष्मण संवाद

मौन राम को देखकर, महल हुआ स्तब्ध।
राम की पीड़ा व्यक्त को, नहीं मिल रहे शब्द।।

सिया बिना यूँ, राम का जीवन।
जैसे प्राण बिना हो, तन–मन।।

राजमहल का वैभव त्यागा, क्यों कर राजाराम ने।
क्या फिर वनवास मिला प्रभु को, यह दुविधा थी सबके मन में।।

मन में उपजे इन प्रश्नों का,जब छोर न कोई मिल पाया।
तब मान लिया सबने मन में, राम ही जाने राम की माया।।

रामराज्य में रहकर भी, सियाराम ह्रदय में बसा न सके।
उनसे दुर्भागी कौन भला, जो परमसत्य को पा न सके।।

भैया राम राजदरबार में ही विश्राम कर रहे है, यह जान कर लक्ष्मण भी राजदरबार चले गये। आज अपने भैया का सामना करने का साहस नहीं कर पा रहे थे। बहुत साहस जुटाकर अंदर प्रवेश किया तो काँप गए। भैया राम अत्यन्त करुण अवस्था में थे। लक्ष्मण ने रोते हुए उनके चरण स्पर्श किए।

श्रीराम–लक्ष्मण, आ गए अनुज। तुमने तो तीन–चार दिनों में लौट आने को कहा था। इतनी शीघ्र तीन–चार दिन बीत गए, पता ही नहीं चला। मेरी जानकी वापस आई तुम्हारे साथ?' 'कहाँ है वे? अच्छा थक गई होंगी। इस अवस्था में इतनी यात्रा की है, अतः महल में विश्राम कर रही होंगी।

पुनः लक्ष्मण की ओर उद्धृत होते हुए– तुम कुछ बोलते क्यों नहीं?

यह सुन लक्ष्मण श्रीराम के पास बैठकर रोने लगे।

श्रीराम–रोते क्यों हो, सब कुशल तो है ना? कहाँ है मेरी जानकी, शीघ्र बताओ।

लक्ष्मण (बिलखते हुए)– मुझे मृत्युदंड दे दो भैया। मैं अत्यन्त घृणित कार्य करके आ रहा हूँ। आपके अनुज लक्ष्मण को अब जीवित रहने का कोई अधिकार नहीं।

श्रीराम– लक्ष्मण, तुम्हें क्या हो गया है ? ऐसा क्यों कह रहे हो? मैं अपने अनुज को भलीभाँति जानता हूँ, वह ऐसा कोई कार्य कदापि नहीं कर सकता, जिससे रघुकुल की कीर्ति पर आँच आए।

लक्ष्मण– किन्तु, आज आपका अनुज नियति से हार गया भैया। वीरवर लक्ष्मण का थोड़ा भी शौर्य काम न आया भैया। आज मैंने जो अपराध किया है वह रघुवंश की कीर्ति पर कलंक की भाँति सदैव रहेगा। मैं तो क्षमा के भी योग्य नहीं। मुझे दंड मिलना ही चाहिए।

श्रीराम– क्या हुआ लक्ष्मण? स्पष्ट कहो।

लक्ष्मण–भैया, हमने आज प्रातः ही वन के लिए प्रस्थान किया था।

श्रीराम (अनभिज्ञतापूर्वक)– अच्छा, तो फिर क्यों लौट आए?'

लक्ष्मण (रोते हुए)– भैया, मैं भाभी माँ को वन में छोड़कर आया हूँ। इसके लिए नियति मुझे कभी क्षमा नहीं करेगी चाहे कितने ही जन्म ले लूँ। भाभी माँ के सामने मेरी एक ना चली। रघुवंशियों की भाँति वे अपने कर्तव्य पथ पर दृढ़ रही। मुझे लगता था युद्ध में रणकौशल दिखाने वाले ही वीर होते है। मुझे रघुवंशियों के वीर होने का बड़ा ही गर्व था भैया किन्तु, ये मेरी भूल थी। आज मैंने भाभी माँ में सच्ची वीरांगना देखी भैया। उनका स्वयं की भावनाओं पर कठोर नियंत्रण देखा। वे तनिक भी विचलित नहीं थी। वे अकेली ही आपको, अयोध्या को, हम सभी को– समस्त लोक अपवाद से मुक्त कर गयी और गर्भावस्था में भी इतना मानसिक संत्रास अकेले सह गयी जबकि, हम दोनों राजभवन में रहकर भी इस पीड़ा से क्लांत हो रहे है। मैं उनके चरणों में नत मस्तक हूँ भैया। यह रघुवंश का दुर्भाग्य ही है कि अब उनका सानिध्य न मिल सकेगा और इसका दोषी आपका लक्ष्मण है भैया।

यह क्या कह रहे हो लक्ष्मण, ऐसा कहते हुए श्रीराम मूर्छित हो गए।

लक्ष्मण ने जल छिड़क कर श्रीराम की मूर्छा दूर की– भैया, उठिये भैया।

श्रीराम (विलाप करते हुए)– मैंने अपने जीवन में विधाता से कुछ नहीं मांगा था, सिवाय देवी सीता के साथ के। पर देखो मेरे भाग्य में वह भी नहीं। आज जब वे गई तो मुझे ज्ञात था अब वे लौटकर नहीं आएँगी किन्तु, लक्ष्मण यह कितना अनुचित है, जब वनवास मुझ अकेले को हुआ था तब तुम और सीता दोनों मेरे साथ गये थे। आज जब देवी सीता को वन जाना पड़ा, वह भी उस अवस्था में जब उन्हें सबसे ज्यादा मेरी आवश्यकता थी तब भी मैं उनके साथ नहीं जा पाया। इसके लिए मैं कभी स्वयं को क्षमा नहीं कर पाऊँगा।

दोनों भाई रोते हुए एक–दूसरे को धीरज बंधाने लगे।

श्रीराम– अनुज, मेरे लिये कुछ कहा वैदेही ने?

लक्ष्मण– हाँ भैया, भाभी ने नियति के इस चक्र को स्वीकारने को कहा। उनके अनुसार महाराज राम को विषाद से बाहर आकर अपने राजधर्म का पालन करना होगा।

श्रीराम–राजधर्म का पालन करने को कहा और मेरे पतिधर्म का क्या लक्ष्मण?

लक्ष्मणजी कोई उत्तर न दे सके और कहने लगे– भाभी के अनुसार आप भौतिक रूप से भले ही उनके साथ नहीं है किन्तु, वे आपको अपने मन में बसा कर ले गई है। अतः मानसिक रूप से आप उनके साथ ही है। अतः भैया आप यह स्वीकार कीजिए कि आप भी उनके साथ वन को गये है और आत्मग्लानि से बाहर आइये।

लक्ष्मण–भाभी माँ ने यह भी कहा भैया, कि समय आने पर आपको अपना पिता धर्म भी निभाना होगा।

श्रीराम–पिता धर्म! किन्तु, कैसे लक्ष्मण?'

लक्ष्मण–ये तो नियति निर्धारित करेगी भैया।

(कुछ क्षणों के मौन के पश्चात)

श्रीराम– लक्ष्मण, मुझे जानकी के कक्ष में ले चलो। कुछ क्षण वहाँ अकेले व्यतीत करना चाहता हूँ। अपनी जानकी को अनुभव करना चाहता हूँ।

लक्ष्मणजी श्रीराम को संभालते हुए महारानी सीता के कक्ष में ले गए, पर यह क्या !

दोनों भाइयों को लगता है कि कदाचित अन्य कक्ष में आ गए है। कक्ष तो रिक्त है, उसमें जानकी के कक्ष जैसी कोई बात नहीं है।

श्रीराम समझ गए– देखों लक्ष्मण, कितनी चिंता थी उन्हें मेरी। स्वयं का कोई चिन्ह नहीं छोड़ गई ताकि मैं विषाद में ना पड़ा रहूँ। लक्ष्मणजी श्रीराम को उनके शयन कक्ष में ले गए।

लक्ष्मणजी (मन ही मन में)– बाल्यावस्था से आज तक मैं राम भैया की छत्रछाया में ही पला–बढ़ा हूँ। उन्हें देखकर सदैव लगता था कि विधाता ने मेरे राम भैया को पूर्ण बनाया है किन्तु, माँ सीता से विवाह उपरांत तो मानों वे परमात्मा की भाँति असीम, अनंत हो गये। जब राज्याभिषेक की बात आई, तब भी वे खुशी से उत्तेजित नहीं हुए और जब वनवास की प्रथम रात्रि उन्हें धरती पर शयन करते देखा, वे तब भी विचलित नहीं थे।

दोनों ही परिस्थितियों में उनका व्यवहार एक सा था। सुख–दुःख में समान व्यवहार सामान्य मनुष्य के वश की बात नहीं।

जीवन में पहली बार राम भैया को विचलित तब देखा था, जब रावण मेरी भाभी माँ (सीता) का अपहरण कर ले गया था। राम भैया उस समय भाभी माँ के वियोग में अपनी सुध बुध तक खो बैठे थे किन्तु, उस अवस्था में भी वे सांसारिक व्यवहार को भूले नहीं। ऐसी अवस्था में भी अपने मन की पीड़ा पर संयम रखते हुए उन्होंने जगत के सारे अपेक्षित कर्तव्यों को उचित प्रकार से संपन्न किया। सर्वप्रथम रावण के आक्रमण से मरणासन्न गिद्धराज जटायु को संभाला फिर उनकी मृत्यु उपरांत, पुत्र की भांति विधिवत उनका अंतिम संस्कार किया। फिर शबरी माँ की कुटिया में जाकर उनके मनोरथ पूर्ण किए तत्पश्चात वानरराज सुग्रीव से मित्रता कर, सुग्रीव के बड़े भाई बालि को दंड देकर सुग्रीव को किष्किन्धा नगरी का राज्य सौंप दिया। भाभी माँ के वियोग में शोकाकुल होने पर भी रावण के प्रति उनका मन सदैव शुभेच्छा से भरा रहा। अंत तक राम भैया प्रयासरत रहे कि रावण सम्मानपूर्वक देवी सीता को पुनः लौटा दे ताकि युद्ध की विभीषिका रावण एवं लंकावासियों को न झेलनी पड़े। रावण वध के पश्चात राम भैया ने महारानी मंदोदरी सहित लंका की अन्य स्त्रियों को मातृवत् सम्मान दिया एवं विभीषण को लंका का राज्य सौंप दिया। राम भैया ने अपने शौर्य–पराक्रम से युद्ध तो जीता किन्तु, कभी स्वयं का वर्चस्व स्थापित करने का प्रयास नहीं किया।

आज भाभी माँ की अनुपस्थिति ने राम भैया को अंदर तक झकझोर दिया है लेकिन, मुझे ज्ञात है प्रकटतः वे अपनी पीड़ा कभी व्यक्त नहीं करेंगे। लोक मर्यादा का सदैव पालन करेंगे और यही बात उन्हें मर्यादा पुरुषोत्तम बनाती है। धन्य है, माँ सीता और प्रभु श्रीराम !

श्रीराम–लक्ष्मण, मैं उनके साथ वन नहीं जा सका तो क्या। मैं मानसिक रूप से तो उनके साथ ही हूँ। अतः मैं भी वनजीवन का ही अनुसरण करूँगा।

श्रीराम ने संकल्प करते हुए लक्ष्मण से कहा– मैं आज से समस्त राजसी भोग–विलास का त्याग करता हूँ। मैं राजा होकर भी वनवासियों की भाँति

जीवन व्यतीत करूँगा। मैं अब धरती पर ही शयन करूँगा। भोजन भी वनवासियों की भाँति एक समय ही करूँगा।

श्रीराम अपने इस निर्णय पर आजीवन अटल रहे। वे धरती पर ही शयन करते थे। वनवासियों की भाँति एक समय ही भोजन करते थे।

उन्हें इस तरह देखकर पूरा महल स्तब्ध था। श्रीराम का यह व्यवहार कभी कोई समझ ही ना पाया। राजमहल की कार्यप्रणाली वैसे ही संचालित होती रही, जैसे महारानी सीता करती थी। महारानी सीता प्रत्यक्षतः तो महल में नहीं थी किन्तु, प्रत्येक कार्य उनके अनुरूप ही हो रहा था। हर पल, हर क्षण वे महल में अनुभव होती रही। भले ही कोई उनका नाम नहीं लेता था, पर सबके हृदय में वे ही विराजमान थी। महारानी सीता के प्रति महल के लोगों की श्रद्धा समय के साथ और बढ़ती गई। कहते है कि समय के साथ परिस्थिति, मनःस्थिति बदल जाती है किन्तु, महारानी सीता के प्रति आदर, प्रेम, विश्वास ने इस सत्य को भी झुठला दिया।

आमजन में जो धारणा बनी कि महाराज राम ने महारानी सीता का परित्याग कर दिया– इस तथ्य को झुठलाने का भी श्रीराम ने कभी प्रयास नहीं किया जबकि, यह कथन उनके लिये अत्यन्त पीड़ादायक था।

श्रीराम के अनुसार– जिसे जो समझना हो वह समझने के लिये स्वतंत्र है। वह उसकी बौद्धिक क्षमता पर निर्भर है। भौतिक रूप से तो देवी सीता मेरे साथ नहीं है किन्तु, राम सीता का त्याग करने की तो कभी सोच भी नहीं सकता। सीता राम के हृदय में बसती है। राम और सीता सदैव साथ थे, साथ है और साथ रहेंगे।

वाल्मीकि आश्रम
में लव-कुश

वाल्मीकि आश्रम में लव–कुश, नित रामायण का गान करें।
मंत्र मुग्ध हो सब सुनते, मानों मन को विश्राम मिले।।

ममतामयी महारानी सिया, है महाप्रतापी राजा राम।
प्रजा हितार्थ ही जीवन उनका, उनको बारम्बार प्रणाम।।

बोलो जय सियाराम, जय जय सिया राम।
जय सियाराम, जय जय सियाराम।।

महाराज राम की आज्ञा अनुसार शत्रुघ्न ने लवणासुर से युद्ध करने के लिए मधुवन की ओर कूच किया। संध्या समय हो जाने पर तथा समीप ही वाल्मीकि आश्रम दिखाई देने पर उन्होंने वाल्मीकि आश्रम में रात्रि विश्राम का विचार कर आश्रम में प्रवेश किया और वहाँ महर्षि वाल्मीकि से भेंट की।

शत्रुघ्न– मैं, प्रतापी सम्राट श्रीराम का छोटा अनुज तथा गौलोकवासी महाराज दशरथ का छोटा पुत्र शत्रुघ्न आपको प्रणाम करता हूँ मुनिवर।

महर्षि वाल्मीकि– चिंरजीवी भव। आइए कुमार शत्रुघ्न, आश्रम में आपका स्वागत है।

शत्रुघ्न– गुरुवर, अगर आपकी अनुमति हो तो क्या मैं यहाँ रात्रि विश्राम कर सकता हूँ?

महर्षि वाल्मीकि (हर्षित होकर)– यह तो हमारे लिए बड़े सौभाग्य की बात होगी। वैसे भी हमारा आश्रम रघुवंशियों के लिए उनके द्वितीय गृह जैसा ही है। आप हमारा आतिथ्य स्वीकार करें।

भोजन में शत्रुघ्न को कंदमूल से बना वनवासी भोजन परोसा गया। भोजन को प्रणाम कर जैसे ही उन्होंने एक कौर मुख में रखा, तो उन्हें अपनी बड़ी भाभी माँ सीता का स्मरण हो आया कि बिल्कुल वही स्वाद, जो भाभी माँ के बनाए भोजन में होता था। आज भोजन करते क्षुधा तो शांत हो गई किन्तु, मन तृप्त नहीं हो रहा।

शत्रुघ्न (मन ही मन में)– इतना स्वादिष्ट भोजन तो अयोध्या के राजमहल में भी नहीं बनता। अवश्य ही यह भोजन बड़ी भाभी माँ ने बनाया है। उन्हें स्मरण हो आया कि, एक बार उन्होंने बड़ी भाभी माँ से बार–बार आग्रह कर वह भोजन बनवाया, जो राम भैया वनवासकाल में करते थे। उस दिन भोजन में जो अलौकिक स्वाद था, वही स्वाद आज यहाँ अनुभव हुआ। उस समय उन्होंने भाभी माँ से कहा था– इतना स्वादिष्ट भोजन मिले तो मैं भी वन जाने को तैयार हूँ। इस पर भाभी माँ ने मीठी सी डाँट लगाई थी, यह कहकर कि, अब कोई कहीं नहीं जाएगा, सब मिलकर साथ यहीं रहेंगे।

बड़ी भाभी माँ के वनवास से लौट आने के बाद मैं तीन नहीं अपितु चार माँओं का लाड़ला हो गया था पर नियति ने कुछ और तय कर रखा था। अवश्य ही बड़ी भाभी माँ यहीं पर है, मुझे उन्हें ढूंढना चाहिए।

मन में यह विचार आते ही उन्होंने आश्रमवासियों से पूछा कि, अयोध्या की महारानी सीता क्या यहीं आश्रम में है, इस पर आश्रमवासी मना कर गए किन्तु, शत्रुघ्न का हृदय कह रहा था, हो ना हो बड़ी भाभी माँ यहीं है। अतः उन्होंने पूरे आश्रम में विचरण करते हुए अपनी बड़ी भाभी माँ को ढूंढा किन्तु, वे असफल रहे, निराश होकर वे अपने कक्ष में आकर शयन करने का प्रयास करने लगे किन्तु, आज आँखों में नींद नहीं अपितु बार–बार बड़ी भाभी माँ दिखाई दे रही थी।

अचानक मस्तिष्क में एक विचार कौंधा, कहीं बड़ी भाभी माँ ने अपनी जीवनलीला समाप्त...

यह विचार आते ही शत्रुघ्न उद्विग्न होकर बैठ गए। नहीं–नहीं, ऐसा नहीं हो सकता, बड़ी भाभी माँ तो किसी भी परिस्थिति का सामना करने में विश्वास रखती थी, परिस्थिति से भागना उनका स्वभाव नहीं था।

उन्हें स्मरण हो आया कि, राम भैया के वनवास से लौटने में विलंब होने पर भरत भैया प्राण त्याग करने को तत्पर हो गए थे, जब यह बात बड़ी भाभी माँ को ज्ञात हुई तब उन्होंने भरत भैया को समझाते हुए कहा था– आत्महत्या सा घृणित कर्म संसार में अन्य नहीं है इसका तो कभी विचार भी नहीं करना चाहिए, इसके तीन कारण है–

1. मानव जन्म परमार्थ के लिए ईश्वर द्वारा प्रदत्त सर्वश्रेष्ठ उपहार है, इसे यूँ ही नष्ट करना ईश्वर और मानवता का अपमान है।
2. हम सनातनी पुर्नजन्म में विश्वास करते है। पूर्व जन्म में हमारे द्वारा किए हुए कार्य (जो उसी जन्म में फलित नहीं हो पाते) प्रारब्ध रूप में हमें वर्तमान जन्म में भोगने होते है। प्रारब्ध भोगने तो आत्मा को होते है पर उसका माध्यम शरीर होता है। अगर हमने शरीर को ही नष्ट कर दिया तो वे प्रारब्ध आत्मा को प्रेत योनि में भोगने पड़ते है और प्रेत योनि अत्यन्त कष्टदायी होती है।

3. हमें प्रत्येक जन्म में जीवन के हर सोपान को अपनी मेहनत, लगन से पार करना होता है। पूर्व जन्म में अर्जित की गई भौतिक उपलब्धियाँ अगले जन्म में किसी काम नहीं आती किन्तु, आध्यात्मिकता के क्षेत्र में ऐसा नहीं होता। प्रत्येक जन्म में अर्जित की हुई आध्यात्मिक उपलब्धियाँ सदैव प्राणी के साथ होती है, चाहे कितने ही जन्म हो जाए। अर्थात प्रत्येक जन्म में आध्यात्मिकता में क्रमशः उत्तरोत्तर उन्नति होती जाती है किन्तु, अगर प्राणी आत्महत्या करता है तो उसकी पूर्वजन्म की आध्यात्मिक उपलब्धियाँ नष्ट हो जाती है। सरल शब्दों में कहे तो **'आत्महत्या आध्यात्मिक पतन का कारण है।'**

बड़ी भाभी माँ के इस प्रकार समझाने पर वहाँ उपस्थित सभी लोगों ने मन में यह निश्चय किया कि आत्महत्या जैसा घृणित कर्म न तो स्वयं करना है, न ही किसी को करने देना है।

शत्रुघ्न (मन में)– मेरी बड़ी भाभी माँ परम विदूषी है। वे यहाँ नहीं है तो क्या हुआ, वे जहाँ भी होंगी जीवन के प्रति अपने दायित्वों का निष्ठापूर्वक निर्वहन कर रही होंगी। वे प्रार्थना करने लगे कि, हे ईश्वर! उनकी रक्षा करना।

इतने में ही महर्षि वाल्मीकि शत्रुघ्न के कक्ष में पधारे और उन्होंने कहा– कुमार, आज हमारे आश्रम में जुड़वा बालकों का जन्म हुआ है, क्या आप मेरे साथ चलकर उन्हें आशीर्वाद देना चाहेंगे?

शत्रुघ्न (प्रसन्नता से)– अवश्य महर्षि, यह तो मेरा सौभाग्य होगा। अतिशीघ्र चलिए ।

(उस समय रघुवंश के ध्वज की छत्रछाया में रघुवंशियों का कुलगान बजाया गया, उसकी ध्वनि वनदेवी तक पहुँची तो वे भी आश्चर्य चकित हो गई कि रघुवंश के कुलदीपकों का जन्म अभी हुआ और अयोध्या सूचना भी पहुँच गई, तब वनदेवी को ज्ञात हुआ कि कुमार शत्रुघ्न रात्रि विश्राम के लिए आश्रम में पधारे है)

वनदेवी को जब यह सूचना मिली कि कुमार शत्रुघ्न महर्षि के साथ उनके कक्ष में नवजात शिशुओं को आशीर्वाद देने पधार रहे है तो उन्होंने यह

सुनिश्चित किया कि शत्रुघ्न को यह पता न चले कि यह दोनों रघुकुलभूषण है। जब शत्रुघ्न आए और दोनों नवजात शिशुओं को आशीर्वाद देने लगे, तब भी उनकी दृष्टि चारों ओर अपनी बड़ी भाभी माँ को ढूँढ रही थी। उन्होंने नवजात शिशुओं की माँ से मिलने की अभिलाषा व्यक्त की। वनदेवी उनसे परदे की ओट से मिली एवं मौन धारण किए रही। निराश शत्रुघ्न बधाई देकर लौट गए।

आश्रम में ही महर्षि वाल्मीकि ने दोनों नवजात शिशुओं का नामकरण किया। बड़े पुत्र का नाम कुश तथा छोटे पुत्र का नाम लव रखा गया। चूंकि, कुश शांत स्वभाव और लव चंचल स्वभाव के थे, अतः उनकी जोड़ी पूरे आश्रम में लव–कुश के नाम से विख्यात हो गई। लव–कुश वाल्मीकि आश्रम में बड़े होने लगे।

उचित समय आने पर वनदेवी ने महर्षि से कहा– गुरुवर! मेरे विचार से अब लव–कुश के विद्या आरंभ करने समय आ गया है। अतः आपसे प्रार्थना है कि आप इन्हें शस्त्र एवं शास्त्र की उचित शिक्षा प्रदान करें।

महर्षि वाल्मीकि– उचित कहा, वनदेवी !

वनदेवी (करबद्ध निवेदन)– गुरुवर, आपसे एक विनती है।

महर्षि– निःसंकोच कहो, पुत्री।

वनदेवी– गुरुवर, आप तो प्रभु श्रीराम को भली–भांति समझते है। उनका आचार–विचार, व्यवहार आप सब जानते है। मुझे अपने लव–कुश को बिल्कुल उनकी भांति गढ़ना है। भले ही वे अपने पिता से दूर है किन्तु, उनके पिता के संस्कार मैं उनमें पोषित करना चाहती हूँ। इसके लिए आप मुझे जो भी आज्ञा देंगे, मैं उसका पालन करने को तत्पर हूँ, यह मेरे जीवन का एकमात्र उद्देश्य है, इसी उद्देश्य के साथ मैंने आपके आश्रम में शरण ली है। जानती हूँ अत्यन्त कठिन है, पर यह तप तो मुझे करना ही होगा। मेरे दोनों पुत्रों में प्रभु श्रीराम की छवि दिखाई देना चाहिए। शौर्य, धैर्य, करुणा, दया, क्षमाशीलता आदि गुणों में वे प्रभु श्रीराम के समकक्ष हों। जब भी कोई उन्हें देखें तो प्रभु श्रीराम को अनुभव कर पाएं और उन्हें श्रीराम का प्रतिबिंब ही समझे।

मैं यह भी चाहती हूँ गुरुवर कि, लव–कुश सदैव अपने पिता का आदर करें। उनमें श्रद्धा और विश्वास रखें। श्रीराम ही उनके आदर्श हों। आज नहीं तो कल जब उन्हें मेरा सत्य ज्ञात हो तो भी उनका अपने पिता के प्रति यह विश्वास कम न हो। वे दोनों अपने माता–पिता की परिस्थिति को समझने में सक्षम हो।

महर्षि वाल्मीकि– अत्यन्त उत्तम विचार है, देवी। ईश्वर ने चाहा तो ऐसा ही होगा। आपके उद्देश्य की पूर्ति के लिए लव कुश को श्रीराम की शिक्षा देनी होगी।

वनदेवी– अर्थात्!

महर्षि वाल्मीकि– हमें लव–कुश को मेरे द्वारा रचित महाकाव्य रामायण का पठन–पाठन कराना होगा, तभी वे दोनों श्रीराम को समझकर आत्मसात कर पाएंगे।

वनदेवी– उचित है, गुरुवर। मैं प्रयत्न करूंगी कि खेल–खेल में दोनों को रामायण के श्लोक कंठस्थ हो जाए।

अब वनदेवी लव–कुश के सामने उठते–बैठते, खाते–खेलते रामायण के श्लोकों का गान करने लगी। धीरे–धीरे लव–कुश को रामायण के श्लोक कंठस्थ होने लगे। अब आश्रम में संध्या समय नियमित रूप से लव–कुश द्वारा रामायण के श्लोकों का गायन होने लगा, इसे सुनकर समस्त आश्रमवासी भाव–विभोर हो जाते।

धीरे–धीरे लव–कुश के मन में जिज्ञासा जन्म लेने लगी। वे वनदेवी से पूछते– माँ, ये राम कौन है ?

वनदेवी–पुत्रों, अपने से बड़ों का नाम ऐसे नहीं लेते। नाम के पहले आदर सूचक शब्दों का प्रयोग आवश्यक है।

लव–कुश–अच्छा माँ ! श्रीराम कौन है ?

वनदेवी– पुत्रों, श्रीराम अयोध्या के चक्रवर्ती सम्राट है।

लव–कुश– चक्रवर्ती है तो क्या संपूर्ण पृथ्वी पर इनका ही शासन है?

वनदेवी– उचित कहा।

लव–कुश– तो क्या ये हमारे भी राजा है?

वनदेवी– उचित कहा, श्रीराम हमारे राजा है और हम सब उनकी प्रजा।

लव–कुश– माँ, गुरुदेव ने जो रामायण महाकाव्य लिखा है क्या वह श्रीराम के जीवन की सत्य घटनाओं पर आधारित है?

वनदेवी– हाँ, अक्षरशः सत्य। हमारे गुरुदेव त्रिकालदर्शी जो है।

लव–कुश– माँ, क्या आप श्रीराम से परिचित है?

वनदेवी (संभलते हुए)– हाँ, अपने राजा के बारे में संपूर्ण प्रजा जानती है। मैं भी तो उनकी प्रजा हूँ।

लव–कुश– माँ, हमारे पिताश्री कौन है? हमारे साथ क्यों नहीं रहते? हमसे कब मिलेंगे?

वनदेवी– पुत्रों, तुम्हारे पिताश्री राज्य के अत्यन्त महत्वपूर्ण पद पर है। अतः वे अपने कार्य स्थल को छोड़ नहीं सकते। इसी कारण से वे हमारे साथ नहीं रह सकते।

लव–कुश– क्या वह महत्वपूर्ण पद महाराज राम ने दिया है?

वनदेवी– उचित कहा।

लव–कुश– क्या महाराज राम कुछ दिनों के लिए हमारे पिताश्री को हमारे साथ रहने की अनुमति नहीं दे सकते?

वनदेवी– नहीं दे सकते। तुम्हारे पिताश्री के बिना महाराज राम को शासन व्यवस्था संभालने में कठिनाई होती है।

लव–कुश– क्या महाराज राम हमारे पिताश्री के बिना नहीं रह सकते?

वनदेवी– क्षणमात्र भी नहीं रह सकते।

लव–कुश– अच्छा। हमारे पिताश्री का नाम तो बता दो।

वनदेवी– पुत्रों, मैं तुम्हारे पिताश्री का नाम अपने मुख से नहीं ले सकती। जब वह मिलेंगे तब स्वयं ही उनसे उनका नाम पूछ लेना। चूंकि, राजा भी अपनी प्रजा का पालन–पोषण एक पिता की भांति करते है। अतः अभी के लिए तुम दोनों अयोध्या नरेश श्रीराम को ही अपना पिता मानों।

लव–कुश– जो आज्ञा माँ।

इस प्रकार लव–कुश को आश्रम में कभी अपने पिता का नाम ज्ञात नहीं हो पाया। रामायण पाठ करते–करते दोनों श्रीराम को ही अपना आदर्श मानने लगे।

एक बार सब बालक आपस में खेल रहे थे। उस खेल में बालकों को यह बताना था कि वे बड़े होकर क्या बनना चाहते है और क्यों? जब कुश की बारी आई तो उसने कहा– मुझे बड़ा होकर श्रीराम की भांति बनना है। इसी प्रकार लव ने भी कहा– मुझे भी बड़ा होकर श्रीराम बनना है।

वनदेवी, गुरुवर और गुरुमाता ने जब दोनों बच्चों का उत्तर सुना तो वे सभी बड़े आनंदित हुए।

गुरुवर ने दोनों बच्चों को अपने पास बुलाकर बड़े स्नेह से पूछा– तुम दोनों को श्रीराम ही क्यों बनना है, कारण स्पष्ट करो।

इस पर लव–कुश ने कहा– श्रीराम बड़े शूरवीर है। वन में इतने सारे राक्षसों का वध किया। समुद्र पर सेतु बनाया और वे अपने भाइयों से भी बड़ा स्नेह रखते है तथा अपने माता–पिता की आज्ञा शिरोधार्य करते है।

गुरुवर उत्तर सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और वनदेवी से कहा– सुना पुत्री! तुम्हारी तपस्या फलीभूत हो रही है।

वनदेवी (अभिभूत होते हुए)– सब ईश कृपा और आपका आशीर्वाद है गुरुवर! बालकों का उत्तर सुनकर मन पुलकित हो उठा है एवं गर्व का अनुभव कर रहा है।

वनदेवी नित्य रात्रि में लव–कुश को श्रीराम के जीवन से जुड़े प्रसंग सुनाती तथा प्रसंग के अंत में उस प्रसंग से मिली शिक्षा के बारे में चर्चा करती।

श्रीराम की कथाएँ जहाँ वनदेवी में नवीन ऊर्जा का संचार कर देती, वहीं लव–कुश ज्ञान प्राप्ति के साथ ही आनंदित हो उठते।

एक दिन जब लव–कुश गुरुवर से रामायण का अध्ययन कर आए, तब उन्होंने वनदेवी से कहा– माँ, आज गुरुवर ने हमें महारानी सीता के बारे में बताया।

वनदेवी (संभलते हुए)– अच्छा, क्या बताया?

लव–कुश– माँ, गुरुवर ने महारानी सीता के जिन गुणों की व्याख्या की। वे सारे गुण हमें आपमें भी दिखाई देते है। महारानी सीता और आप आचार–विचार, व्यवहार से समान लगती है।

वनदेवी (स्वयं को संयमित रखते हुए)– अच्छा, कैसे?

लव–कुश– जैसे, महारानी सीता संवेदनशील है। वे बिना कहे श्रीराम के मन के भाव पढ़ लेती है। वैसे ही हमारे बिना कहे आप हमारे मन के भाव पढ़ लेती हो।

महारानी सीता निर्भीक है, वैसे ही आप भी कभी भयभीत नहीं होती।

महारानी सीता विदुषी है। वैसे ही किसी समस्या का निराकरण आप कुशलतापूर्वक कर लेती हो।

महारानी सीता श्रीराम को अपना आराध्य मानती है और आप भी।

वनदेवी ने (बीच में टोकते हुए) दोनों को निकट बुलाकर स्नेह से गले लगाकर कहा– पुत्रों, सभी बालकों को अपनी माँ सर्वगुण संपन्न लगती है। अतः कदाचित मेरे प्रति स्नेह के कारण तुम दोनों को ऐसा अनुभव हो रहा है। भोजन का समय हो गया है और वार्तालाप बहुत हो चुका, चलो अब भोजन कर लो।

इस प्रकार वनदेवी ने लव–कुश की चर्चा को विराम दे दिया।

अगले दिन वनदेवी गुरुवर से मिली और उनसे विनती की– गुरुवर, लवकुश मुझमें महारानी सीता को देखने लगे है। इससे मन कदाचित चिंतित हो उठा है।

गुरुवर– चिंतित मत होइए, देवी। सत्य से दोनों का साक्षात्कार हो रहा है। वे गंभीरतापूर्वक रामायण का अध्ययन, मनन कर रहे है। ऐसे ही तो वे रामायण को आत्मसात कर पाएंगे।

वनदेवी (संकोच में)– गुरुवर, रामायण के कुछ प्रसंग जैसे ''महारानी सीता का निर्वासन'' उन्हें अध्ययन कराना आवश्यक है क्या?

गुरुवर (गंभीर होते हुए)– हाँ देवी, उन्हें अध्ययन कराना भी आवश्यक है और इस प्रसंग से लव–कुश के मन में उपजी दुविधा का निराकरण करना भी आवश्यक है। तभी हमारा उद्देश्य सार्थक हो पाएगा।

एक दिन जब लव–कुश गुरुवर से रामायण का अध्ययन कर आए तो थोड़े विचलित थे, उनकी आँखें नम थी। वनदेवी उन्हें देखकर समझ गई। वनदेवी ने उन्हें बहलाने के लिए अपने हाथों से बनाए काष्ठ के खिलौने दिए ताकि वे खेलने में व्यस्त हो जाए किन्तु, वे दोनों वनदेवी के आँचल में सिमट गए और बोले– माँ, श्रीराम ने यह उचित नहीं किया। मात्र प्रजा के कहने से निर्दोष महारानी सीता को निर्वासित कर दिया।

वनदेवी जिस परिस्थिति से आशंकित रहती थी, आज वह उनके समक्ष आन पड़ी थी।

वनदेवी ने स्वयं को संयत रखते हुए दोनों बालकों को निज अंक में भर लिया तथा स्नेह से दोनों के शीश सहलाते हुए लगभग भावशून्य सी होते हुए कहने लगी– पुत्रों, जीवन में कई बार ऐसी जटिल परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है, जिनकी जटिलता का आँकलन करने के लिए उनकी गहराई में जाना आवश्यक है।

तुम दोनों ने अब तक रामायण का जितना अध्ययन किया है, उनमें से किन–किन प्रसंगों में प्रभु श्रीराम ने आदर्श आचरण नहीं किया। मेरे इस प्रश्न का उत्तर सोच विचार कर देना।

कुछ क्षणों के मौन के पश्चात . . . . .

वनदेवी दोनों का शीश सहलाते हुए पुनः कहने लगी– उत्तर दो पुत्रों।

इस पर लव–कुश ने कहा– माँ, इस प्रसंग (सीता निर्वासन) के अतिरिक्त अन्य कोई प्रसंग हमारे अनुभव में नहीं आ रहा।

वनदेवी– विचार करो पुत्रों, जिन श्रीराम का जीवन काँच की तरह पारदर्शी रहा है। जिन्होंने सदैव धर्मानुकूल आचरण किया है। क्या इस एक प्रसंग (सीता निर्वासन) का गहन अध्ययन किए बिना श्रीराम के चरित्र पर प्रश्न उठाना उचित है?

कुछ क्षणों के लिए पुनः मौन छा जाता है।

लव–कुश– माँ, क्या आप इस प्रसंग से अवगत थी?

वनदेवी– हाँ, मैंने भी तो महर्षि से रामायण का अध्ययन किया है।

लव–कुश– इस प्रसंग (सीता निर्वासन) पर आपका क्या मत है, माँ?

वनदेवी– पता है पुत्रों, मानवजाति की एक विडंबना है। जब हमारे संग रहने वाला हमारे जैसा मनुष्य स्वयं के जीवन में उच्च मानदंड स्थापित करते हुए सफलता के शीर्ष पर पहुँचता है तब हम उसके पुरुषार्थ की अनदेखी करते हुए उसे ईश्वर का अंश या स्वयं ईश्वर मान बैठते है और उससे नित नवीन चमत्कार की आशा रखते हुए बड़ी–बड़ी अपेक्षाएँ करने लगते है। यहीं से हम उस मनुष्य के साथ ही नहीं अपितु स्वयं के साथ भी अन्याय करने लगते है। होना तो यह चाहिए था कि, हम उस मनुष्य द्वारा अपनाए गए आदर्शों को अपने जीवन में आत्मसात करके आदर्श मनुष्य बनकर एक उन्नत समाज की स्थापना करते किन्तु, इसमें हमारा पुरूषार्थ लगता। अतः हम अपेक्षाकृत सरल मार्ग को चुनते हुए उस मनुष्य को ईश्वर की संज्ञा देकर मान बैठते है कि, वह तो ईश्वर है और ईश्वर सर्व समर्थ होता है। दूसरी ओर हम तो साधारण मनुष्य है। यहाँ हम दोहरे मापदंड स्थापित करते है। एक ओर तो हम उस मनुष्य को ईश्वर मानते है। वहीं दूसरी ओर हम उसके द्वारा किए गए प्रत्येक कार्य का उचित या अनुचित कार्य के रूप में मूल्यांकन करते है अर्थात हम उस मनुष्य को मानवीय मर्यादा में बांधना चाहते है। जबकि यह सर्वविदित है कि ईश्वर मन–बुद्धि–इंद्रियों से परे होता है, अतः ईश्वर के क्रियाकलाप का मूल्यांकन/आँकलन सामान्य मनुष्य द्वारा संभव ही नहीं।

तुम दोनों मुझे बताओ ईश्वर तो असीम होता है। उन्हें मानवीय मर्यादा में बांधना उचित है क्या?

लव–कुश– नहीं, यह उचित नहीं।

वनदेवी– पुत्रों, कोई भी कार्य उचित है या अनुचित इसका सही आँकलन केवल समय कर सकता है क्योंकि, उचित समय आने पर उस कार्य की आवश्यकता और महत्ता स्वयंसिद्ध हो जाती है। मुझे लगता है ''महारानी सीता निर्वासन'' प्रसंग में वह उचित समय आना अभी शेष है। अतः अभी किसी निष्कर्ष पर पहुँचना उचित नहीं।

वनदेवी– तुम्हें पता है पुत्रों, श्रीराम को मैं अपना आदर्श क्यों मानती हूँ?

लव–कुश चुपचाप वनदेवी के आँचल में सिमटे हुए अपनी माँ की बात ध्यान से सुन रहे है।

वनदेवी– क्योंकि, श्रीराम से मुझे सत्य और धर्म के पथ पर अग्रसर होते रहने की प्रेरणा मिलती है। सत्य और धर्म का अनुगामी होने में ही मानव जीवन की सार्थकता है।

वनदेवी– तुम दोनों मुझे उत्तर दो, अभी इस धरा पर प्रभु श्रीराम से श्रेष्ठ कोई अन्य मनुष्य तुम्हारे अनुभव में है क्या?

लव–कुश (सोचकर)– नहीं, माँ।

वनदेवी– किसी भी मनुष्य के उत्थान में सर्वाधिक प्रेरणास्रोत कौन होता है, समकालीन मनुष्य या पूर्व में सुकृत किए मनुष्य?

लव–कुश– समकालीन मनुष्य।

वनदेवी– क्यों?

लव–कुश–क्योंकि, हमारे अंदर उस मनुष्य जैसा कर्म करने की और बनने की इच्छा जागृत होती है। हमें लगता है कि अगर वह मनुष्य इस कार्य को कर सकता है तो हम भी इस कार्य को कर पाएँगे ।

वनदेवी– अर्थात् समकालीन मनुष्य हमें सर्वाधिक प्रेरित कर पाता है। अतः तुम दोनों मुझे वचन दो, प्रभु श्रीराम में सदैव श्रृद्धा–विश्वास रखोगे चाहे कैसी भी परिस्थिति हो।

लव–कुश– माँ, हम वचन देते है हम सदैव प्रभु श्रीराम में श्रृद्धा–विश्वास रखेंगे।

लव–कुश का उत्तर सुनकर वनदेवी के मुख पर संतोष छा गया।

वनदेवी (मन ही मन)– गुरुदेव ने उचित ही कहा था कि बाल मन (लव–कुश) की दुविधा का निराकरण करना आवश्यक था।

आज वनदेवी का चित्त शांत हो चला था। उन्हें लगा आज मेरे जीवन का सबसे महत्वपूर्ण कार्य संपन्न हो गया। मैं इसमें कितनी सफल हो पाई यह तो समय ही बताएगा। वे प्रार्थना करने लगी– हे विधाता! मेरे पुत्रों का उचित मार्गदर्शन करना।

अयोध्या नरेश श्रीराम द्वारा
अश्वमेध यज्ञ

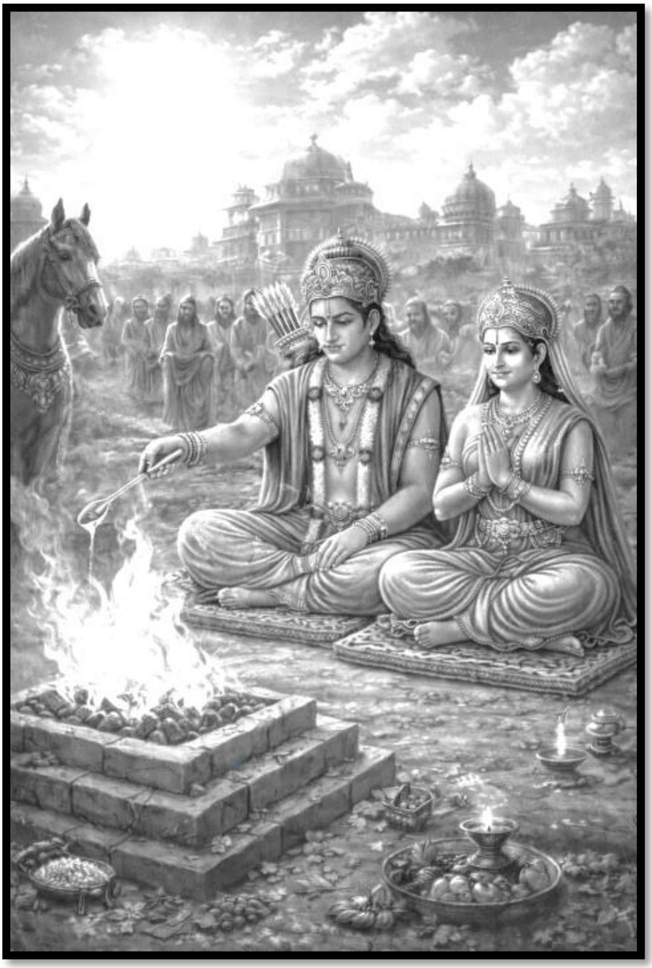

अश्वमेध पूरण करने को, ऋषियों ने आदेश दिया।
विनयी राम ने हाथ जोड़कर आग्रह अस्वीकार किया।।

बोले मुनिवर राम तुम्हें दूजी पत्नी लानी होगी।
यज्ञ सफल करने को राजन, रानी वाम बिठानी होगी।।

राम कहें मेरे जीवन में, दूजी पत्नी का स्थान नहीं।
अगर दूजी पत्नी ले आऊँ, तो मैं सिया का राम नहीं।।

हूँ मैं गर्वित सिया को पाकर,
हूँ मैं गर्वित सिया को पाकर, मन सदा उनका आभारी है।
मन–कर्म–वचन समर्पित मुझको, सिया मेरी प्राण प्यारी है।।

स्वर्ण सीता बनवा लो मुनिवर, कोई अन्य उपाय नहीं।
राम सिया है, सिया राम है, हममें कोई भेद नहीं।।

गुरुजनों एवं ऋषि–मुनियों की आज्ञा अनुसार प्रजा में व्याप्त अशांति को दूर करने हेतु एवं धर्म की स्थापना के उद्देश्य से महाराज राम ने अश्वमेध यज्ञ करने का निर्णय लिया।

अश्वमेध यज्ञ के लिए जब गुरुजनों ने उनके पुनर्विवाह की बात कही। यहाँ तक कि प्रजा भी दूसरे विवाह के लिए अपने महाराज राम से आग्रह करने लगी, तब भरी सभा में श्रीराम ने बड़ी विनम्रता से हाथ जोड़कर यह प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया, यह कहकर कि– यह पाप मुझसे नहीं होगा। मैंने आजीवन एक पत्नीव्रती रहने का संकल्प किया है। मैं मन–वचन–कर्म से अपनी पत्नी सीता के प्रति समर्पित हूँ। मैं इस जन्म तो क्या जन्म–जन्मातंर तक उन्हें ही पत्नी रूप में पाना चाहता हूँ। मैं आजीवन देवी सीता का आभारी रहूँगा कि उन्होंने मुझे पति रूप में स्वीकार किया। मुझे तो देवी सीता का पति होने पर गर्व है। मुझे उनकी शुचिता पर कभी भी संदेह नहीं रहा, केवल प्रजा आज्ञा होने के कारण वे अयोध्या से निर्वासित हुई किन्तु, मेरे जीवन में आज भी उनका वही स्थान है जो पहले था। उनका स्थान मैं किसी और को नहीं दे पाऊँगा। यह उस नारी के साथ भी अन्याय होगा, जिन्हें आप देवी सीता के स्थान पर प्रतिष्ठित करना चाहते है। आपके राम ने सदैव आपकी हर बात को देव आज्ञा मानकर शिरोधार्य करते हुए उसका अक्षरशः पालन किया है।

जिस राम ने कभी अपनी असहमति व्यक्त नहीं की वह आपसे बार–बार विनती कर रहा है कि दूसरा विवाह मैं नहीं कर पाऊँगा। कृपा करके इस संबंध में अब मुझसे कोई चर्चा न करें।

(नोट– श्रीराम भी अस्वीकार कर सकते है। यह सबके लिए स्वीकार करना असंभव था, जो राम आजीवन स्वीकार की मूर्ति रहे, देवी सीता के लिए उन्होंने अपने उस स्वरूप को भी ठुकरा दिया)

महाराज राम– रही बात अश्वमेध यज्ञ पूर्ण करने के लिए, अगर ऋषि–मुनि एवं गुरुजन उचित समझे तो स्वर्ण की सीता बनवाकर मेरे वामांग में प्रतिष्ठित कर सकते है, इससे मेरा व्रत भी रह जायेगा एवं यज्ञ भी पूर्ण हो जाएगा।

(नोट– अपने पूरे जीवन में श्रीराम ने स्पष्टतः दो बार मना किया।

पहली बार– शूर्पणखा का विवाह प्रस्ताव यह कहकर ठुकरा दिया कि मैंने आजीवन एक पत्नीव्रती रहने का निश्चय किया है। अतः मैं आपसे विवाह नहीं कर सकता।

दूसरी बार– अश्वमेध यज्ञ के समय गुरुजनों, ऋषि–मुनियों एवं प्रजा की आज्ञानुसार पुनर्विवाह का आग्रह अस्वीकार कर दिया, कारण वही था एक पत्नीव्रती रहने का निश्चय)

श्रीराम ने अश्वमेध यज्ञ हेतु सभा बुलाई और कहा– गुरुजनों की आज्ञा अनुसार हम नैमिषारण्य में अश्वमेध यज्ञ का आयोजन करने जा रहे है। अतः समस्त प्रजा, अन्य राजा एवं ऋषि–मुनि, ज्ञानीजन सबको यज्ञ में आमंत्रित किया जाए एवं उचित व्यवस्थाएँ की जाए ताकि यज्ञ निर्विघ्न संपन्न हो सके।

श्रीराम की आज्ञा अनुसार यज्ञ का आयोजन नैमिषारण्य में किया गया एवं सभी योग्य महानुभावों को निमंत्रण दिया गया। इसी क्रम में महर्षि वाल्मीकि को भी यज्ञ में पधारने का निमंत्रण दिया गया।

वाल्मीकि आश्रम में सबको ज्ञात हो गया कि, महाराज राम नैमिषारण्य में अश्वमेध यज्ञ का आयोजन कर रहे है और महर्षि वाल्मीकि को यज्ञ में पधारने का निमंत्रण दिया है।

निमंत्रण पाकर महर्षि ने कुछ शिष्यों और लव–कुश को साथ लेकर नैमिषारण्य के लिए प्रस्थान किया।

यह बात जानकर इतने वर्षों के पश्चात वनदेवी का मन उद्वेलित हो उठा, उनके मन में विचारों का मंथन चलने लगा। मेरे प्रभु श्रीराम अश्वमेध यज्ञ कर रहे है। यज्ञ संपन्न करने के लिए धर्मपत्नी संग आहुति देना अनिवार्य है तो क्या उन्होंने पुनः विवाह कर लिया है? क्या अयोध्या की महारानी के पद पर कोई अन्य स्त्री प्रतिष्ठित हो चुकी है? यह विचार आते ही उनका मन व्यथित हो गया फिर वे स्वयं को समझाने का प्रयास करने लगी। इतने वर्ष बीत गए अब तक तो प्रभु श्रीराम को मेरी विस्मृति हो चुकी होगी। वैसे श्रीराम सदैव कामना रहित है किन्तु, प्रजाजनों, गुरुजनों की

आज्ञा से अथवा राजकीय कारणों से उन्हें विवाह करना पड़ा होगा। उचित ही है कि वे अपने जीवन में आगे बढ़ गए। विधाता से प्रार्थना है कि नई महारानी अपने महाराज का भावनात्मक संबल बने।

वनदेवी (मन ही मन में)– जब मैं उनके साथ थी तब वे मन–वचन–कर्म से मेरे प्रति समर्पित थे। मेरी प्रत्येक भावना का हृदय से सम्मान करते थे। हर परिस्थिति में मेरे साथ खड़े रहते थे। मुझे कभी दुःखी नहीं देख सकते थे। मुझे आज भी स्मरण है वनवास पर जाने से पहले जब माँ कैकई ने हम तीनों (राम, लक्ष्मण, सीता) को वल्कल वस्त्र पहनने को दिए, तब उन वस्त्रों को न पहन पाने की मेरी अक्षमता प्रभु श्रीराम मेरे बिना कहे ही समझ गए और मुझे एकांत में ले जाकर वल्कल वस्त्र पहनना सिखाया। वे मेरे प्रति इतने संवेदनशील थे, उन्हें पति रूप में पाकर मेरा जीवन धन्य हो गया। ईश्वर का बहुत–बहुत आभार।

मेरे बारे में लोक अपवाद ज्ञात होने पर मेरे वियोग की आशंका मात्र से विषादग्रस्त हो गए थे। उनकी उस अवस्था को स्मरण कर मन आज भी पीड़ा से भर जाता है। वैसे तो संपूर्ण रघुवंश उनके साथ है किन्तु, यह भी अटल सत्य है कि पत्नी का स्थान कोई अन्य नहीं ले सकता। आश्रम में आने के पश्चात मुझे लव–कुश में प्रभु श्रीराम का अनुभव होता रहा। लव–कुश के लालन–पालन में इतनी व्यस्त हो गई कि समय का भी भान न रहा किन्तु, मुझे अनुभव करने के लिए उनके पास मेरा कोई स्मृति चिन्ह शेष नहीं था। मैं तो अपना कक्ष, वस्त्र, आभूषण सब कुछ परिवर्तित कर आई थी। मैं भी तो यही चाहती थी कि वे मेरे विरहजनित विषाद से बाहर आए। लक्ष्मण भैया से मैंने प्रभु को यही अंतिम संदेश कहलवाया था। सब कुछ तो मेरी इच्छा अनुसार ही हो रहा है किन्तु, फिर भी मन बार–बार क्यों उद्वेलित हो रहा है?

तभी उन्हें लव–कुश की स्मृति हो आई। वे विचारने लगी, क्या लव–कुश की अपने पिता से भेंट हो पाएगी? क्या उचित समय आने पर श्रीराम लव–कुश को पुत्र रूप में स्वीकार करेंगे? क्या समाज में लव–कुश को वह मान–सम्मान मिल पाएगा, जिसके वे अधिकारी है?

आशंकाग्रस्त होकर वे ईश्वर से प्रार्थना करने लगी– हे विधाता! मुझे जीवन में जितनी परीक्षाएँ देनी पड़ी, मैंने दी है और आगे भी देती रहूँगी किन्तु, मेरे लव–कुश को उनके अधिकार से वंचित न करना।

तभी अगले क्षण में मानों उनकी तंद्रा भंग हुई। वे विचारने लगी कि, मेरे प्रभु श्रीराम आदर्श रघुवंशी है, रघुवंशी वचन पालन में अडिग रहते है।

''रघुकुल रीति सदा चली आई, प्राण जाए पर वचन न जाई।''

विवाह पश्चात वे मुझे आजीवन एक पत्नीव्रती रहने का वचन दे चुके थे ऐसे में दूसरे विवाह की तो वे सोच भी नहीं सकते। वे मन–ही–मन श्रीराम से अपने इन विचारों के लिए क्षमा मांगने लगी। वे प्रार्थना करने लगी– हे माँ गौरी! मुझे शक्ति दो, मुझे इन विचारों के भंवर से बाहर निकालो।

वनदेवी ने निश्चय किया कि, मुझे अन्यथा विचार न करते हुए महर्षि और लव–कुश के लौट आने की प्रतीक्षा करना चाहिए तभी सही वस्तुस्थिति ज्ञात हो पाएगी। यह भी तो हो सकता है कि अश्वमेध यज्ञ की आहुति भैया भरत, लक्ष्मण या शत्रुघ्न द्वारा दी जा रही हो।

उधर, जब महर्षि वाल्मीकि नैमिषारण्य पहुंचे तो कुशलतापूर्वक किया गया यज्ञ प्रबंधन देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने लव–कुश से कहा– पुत्रों, तुम दोनों भाई सब ओर विचरण करते हुए प्रसन्न मन से संपूर्ण रामायण महाकाव्य का गायन करो। विशेष रूप से ध्यान रहे कि यह गायन महाराज राम के भवन के आस–पास भी हो। जैसा कि मैंनें तुम्हें उपदेश दिया है, उसी अनुसार प्रतिदिन बीस सर्गों का मधुर स्वर से गान करना।

जब क्षुधा सताए तो यहाँ के फल, कंदमूल का भक्षण करना और हाँ, विशेष ध्यान रहे कि हम आश्रम में रहने वाले वनवासियों को धन से क्या प्रयोजन। अतः यदि कोई धन देने का प्रयास करे तो विनम्रतापूर्वक मना कर देना।

यदि महाराज श्रीराम तुम दोनों को काव्य पाठ सुनाने के लिए बुलावें तो यथायोग्य विनम्रतापूर्वक सुनाना। ऐसा कोई भी व्यवहार न करना जिससे राजा का अपमान हो क्योंकि, राजा अपनी संपूर्ण प्रजा का पिता होता है।

यदि महाराज राम तुम दोनों से पूछे कि तुम किनके पुत्र हो, तो तुम दोनों बड़ी विनम्रता से बस इतना कहना कि, हम दोनों भाई महर्षि वाल्मीकि के शिष्य है।

इस प्रकार समझाकर महर्षि वाल्मीकि ने लव–कुश को वीणा देकर यज्ञ क्षेत्र के लिए प्रस्थान करने की अनुमति दी।

अगले दिन प्रातः लव–कुश दैनिक कार्यों से निवृत्त होकर, महर्षि के कथनानुसार पूरे यज्ञ क्षेत्र में विचरण करते हुए वीणा के स्वरों को झंकृत करते हुए रामायण के श्लोकों का गान करने लगे।

जिसने भी वह मधुर गान सुना, भावविभोर हो उठा। वहाँ उपस्थित सभी लोग गायन की शैली से अत्यन्त प्रभावित हुए। वे विचार करने लगे यह अवश्य ही कोई नई रचना है। इससे पूर्व इसे कभी सुना या गाया नहीं गया। व्याकरण की दृष्टि से भी काव्यपाठ में कोई त्रुटि नहीं है।

धीरे–धीरे लव–कुश की प्रशंसा महाराज राम तक पहुँची, तब उन्होंने दोनों ऋषि कुमारों को सभा मंडप में काव्य पाठ के लिए आमंत्रित किया।

सभा मंडप में महाराज राम के साथ अनेक ऋषि–मुनि, विद्वान, विभिन्न प्रदेशों से आमंत्रित राजा, रघुकुल के अन्य सदस्य, मंत्रीगण, प्रजाजन आदि अनेक महानुभाव विराजमान थे।

लव–कुश ने जैसे ही सभा मंडप में प्रवेश किया। वहाँ उपस्थित सभी महानुभावों की दृष्टि अपलक उन दोनों को निहारने लगी। वे आपस में बात करने लगे कि, दोनों ऋषि कुमार बड़े ही अद्वितीय दिखाई दे रहे है। ध्यान से देखने पर इन दोनों कुमारों की मुखाकृति महाराज राम से शतप्रतिशत मेल खाती है, मानों यह दोनों महाराज राम का ही प्रतिबिंब हों। यदि इनके शीश पर जटा न हो और इन्हें राजसी पोषाक पहना दी जाए तो इनमें और महाराज राम में कोई अंतर दिखाई नहीं देगा।

जब वे इस प्रकार आपस में बात कर रहे थे तभी लव–कुश ने सभा में उपस्थित सभी महानुभावों को सादर प्रणाम किया और महाराज राम की अनुमति लेकर रामायण का गायन प्रारंभ किया। उन दोनों के गायन को सभी मंत्रमुग्ध होकर सुनते रहे।

बीस सर्गों तक गायन के उपरांत महाराज राम ने अनुज भरत से कहा– भैया भरत, तुम अभी इन दोनों ऋषि कुमारों को अट्ठारह हजार स्वर्ण मुद्राएँ पुरस्कार स्वरूप प्रदान करो। इसके अतिरिक्त इनकी जो भी कामना हो, वह शीघ्रातिशीघ्र पूर्ण करो।

महाराज से आज्ञा पाकर कुमार भरत लव–कुश को स्वर्ण मुद्राएँ देने लगे किन्तु, लव–कुश ने विनम्रतापूर्वक मना कर दिया, यह कहकर कि– हम वनवासी है, वन में उत्पन्न वनोपज से हमारा निर्वाह हो जाता है। अतः हमें इस धन की कोई आवश्यकता नहीं।

कुमार भरत (लव–कुश से)– तुम दोनों के मन में जो भी कामना हो स्पष्ट कहो, महाराज राम तुम्हारी हर कामना पूर्ण करने को तत्पर है।

लव–कुश– हमारी ऐसी कोई कामना नहीं है। आप सभी हमें यह आशीर्वाद दीजिए कि हम सदैव इस महाकाव्य का गायन करते रहे।

लव–कुश के इस प्रकार कहने पर श्रीराम सहित सभी महानुभाव आश्चर्यचकित रह गए।

तब महाराज राम ने लवकुश से पूछा–ऋषि कुमारों, तुम दोनों ने अपने गायन से यहाँ उपस्थित हम सभी को भावविभोर कर दिया है। इस काव्य को इससे पहले आज तक किसी ने नहीं सुना है। हम सब जानना चाहते है तुम दोनों कौन हो? इस काव्य का नाम क्या है? इसके रचयिता कौन है? इस काव्य में कितने श्लोक है?

लव–कुश (प्रणाम करते हुए)– महाराज, हम दोनों भाई कुश और लव महर्षि वाल्मीकि के शिष्य है। इस काव्य का नाम रामायण है। इसमें आपके संपूर्ण जीवन चरित्र का वर्णन है। इसके रचयिता हमारे गुरुदेव महर्षि वाल्मीकि है और वे अभी यज्ञ स्थल में पधारे हुए है। हम उनके साथ ही आए है। इस महाकाव्य में चौबीस हजार श्लोक तथा सौ उपाख्यान है। इन्हें महर्षि ने पाँच सौ सर्ग तथा सात कांडों में सूचीबद्ध किया है।

लव–कुश (विनती करते हुए)– महाराज यदि यह महाकाव्य आपको अच्छा लगा है तो कृपा करके यज्ञ कर्म से निवृत्त होकर आप इसके श्रवण के लिए समय निकालिए। हम दोनों भाई प्रतिदिन आपके समक्ष इसका गायन करेंगे।

इस प्रकार सभा मंडप में लव–कुश द्वारा नित्य रामायण का गायन होता रहा। उस गायन से ही महाराज राम और उपस्थित अन्य महानुभावों को ज्ञात हुआ कि यह दोनों ऋषि कुमार लव और कुश श्रीराम व देवी सीता के सुपुत्र है। यह ज्ञात होते ही श्रीराम एक पल को मौन से स्तब्ध रह गए। वे प्रेम में विह्वल होकर विचारने लगे– यह दोनों मेरे पुत्र है! रघुकुल भूषण है! मन कर रहा है, दोनों को अपनी गोद में बिठाकर हृदय से लगा लूँ किन्तु, राजकीय मर्यादा से बंधे व्यक्तित्व को यह करना शोभा नहीं देता।

यज्ञ के सारे दायित्व निर्वहन के उपरांत रात्रि में महाराज राम (मन ही मन में)– वैसे तो देवी सीता सदैव उनके हृदय में ही बसती थी। क्षण मात्र के लिए भी वे उनसे कभी दूर नहीं हुई किन्तु, आज उन्हें देवी सीता से अंतिम मिलन के क्षण स्मरण हो आए। उनके नैनों से अश्रुधारा बहने लगी। जब से देवी सीता गई है, मानों जीवन थम–सा गया है। देवी सीता के वनगमन पश्चात राम में राम जैसा कुछ शेष रहा ही नहीं। केवल महाराज राम है, जो पूर्णतः अपनी प्रजा को समर्पित है। आज देवी सीता का ओजस्वी मुख आँखों के सामने से हटता ही नहीं था। पता नहीं कैसे देवी सीता ने अकेले लव–कुश का लालन–पालन किया होगा। जीवन की चुनौतियों का सामना कैसे किया होगा। लव–कुश कितने बड़े हो गए है, जिनकी किलकारियों से अयोध्या के राजभवन को गुंजायमान होना था, विधि का खेल देखों वे दोनों स्वयं को वनवासी मानते है।

महाराज राम (सभासदों एवं गुरुजनों को मंत्रणा कक्ष में बुलाकर)– वैसे तो यहाँ उपस्थित आप सभी महानुभाव तथा प्रजाजन हृदय से स्वीकार कर चुके है कि लव–कुश मेरा ही प्रतिबिंब है। प्रत्यक्ष को प्रमाण की क्या आवश्यकता। इसका तात्पर्य देवी सीता की शुचिता स्वयं प्रमाणित हो चुकी है अतः क्या उन्हें पुनः अयोध्या की महारानी के पद पर प्रतिष्ठित किया जा सकता है। इस बारे में आप सबका मत जानने हेतु मैं उत्सुक हो उठा हूँ।

इस प्रकार मन की बात कहकर महाराज राम ने सबका मत जानना चाहा किन्तु कोई भी स्पष्टतः कुछ कहने को तैयार नहीं हुआ। महाराज राम के धैर्य का बांध टूट रहा था।

महाराज राम के बार–बार पूछने पर सबने मिलकर यह उत्तर दिया– महाराज, वैसे तो हम सभी ने उन दोनों ऋषि कुमारों को देखा है और वे दोनों आपके ही प्रतिबिंब है इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है किन्तु, राजकीय मर्यादा के अनुसार यदि यह बात स्वयं देवी सीता यहाँ सबके समक्ष आकर सप्रमाण कह दे तो अतिउत्तम होगा। अन्यथा जैसा आपको उचित लगे।

महाराज राम ने गुरु वशिष्ठ की ओर देखा, मानों पूछ रहे हो– गुरुवर ! इतना सब होने के बाद भी . . . . .

गुरुवर ने अश्रुपूरित नैनों से महाराज राम की ओर देखा, मानों कह रहे हो– इसे विधि की विडम्बना कहे या अवध का दुर्भाग्य, जो इतने वर्षो तक रामराज्य में रहने के उपरांत भी प्रजाजन अपने अंदर विवेक जागृत नहीं कर पाए।

गुरू वशिष्ठ के मनोभाव महाराज राम समझ गए।

महाराज राम ने अत्यन्त कठिनाई से अपने अंदर उठते भावनाओं के ज्वार को संभाला और अपने विशेष दूतों को बुलाकर कहा– मित्रों, तुम महर्षि वाल्मीकि के पास जाकर उन्हें हमारा यह संदेश सुना देना कि, यदि देवी सीता का चरित्र पूर्णरूपेण शुद्ध है तो वे महर्षि की अनुमति लेकर यहाँ आकर सबके समक्ष अपनी शुद्धता प्रमाणित करें।

दूत यह संदेश लेकर महर्षि वाल्मीकि के पास गए और महर्षि को प्रणाम कर महाराज राम का संदेश सुनाया।

महर्षि वाल्मीकि (दूतों से)– यदि महाराज राम की यही आज्ञा है तो कल देवी सीता स्वयं सभा में उपस्थित होकर अपनी शुचिता का प्रमाण देंगी क्योंकि, देवी सीता परम पतिव्रता है और पतिव्रता नारी सदैव अपने पति की आज्ञा में रहती है। यह संदेश आप महाराज राम को दे देना।

दूतों ने महर्षि वाल्मीकि को प्रमाण कर, महाराज राम के पास पुनः लौटकर महर्षि का संदेश सुना दिया।

महाराज राम (यज्ञ में पधारे सभी महानुभावों से)– यहाँ पधारें समस्त माननीयगण एवं अन्य कोई भी मनुष्य जो देवी सीता की शपथ सुनने की अभिलाषा रखता है वे सब कल प्रातः सभा मंडप में उपस्थित हो जाए।

महाराज राम (मन ही मन में)– जिस प्रश्न के कारण देवी सीता का निर्वासन हुआ। इतने वर्ष उपरांत भी वही प्रश्न पुनः देवी सीता के समक्ष उपस्थित हुआ है। श्रीराम का मन अत्यन्त व्यथित हो उठा, आत्मग्लानि और पीड़ा से भर गया। मैं अयोध्या नरेश होते हुए भी देवी सीता के लिए कुछ नहीं कर पा रहा हूँ। पता नहीं कल वे इस प्रश्न का निराकरण किस प्रकार कर पाएंगी किन्तु, मुझे उनकी विद्वता पर पूर्ण विश्वास है। बस नियति कुछ और खेल न खेल जाए।

वे (मन ही मन में)– हे ईश्वर! देवी सीता का मनोबल बनाए रखना।

आज रात्रि का एक–एक क्षण महाराज राम को मानों युग समान प्रतीत हो रहा था। इतने वर्षों उपरांत उन्हें देवी सीता के दर्शन जो होने वाले थे।

उधर, महर्षि वाल्मीकि ने महाराज राम का संदेश आश्रम में देवी सीता को भिजवा दिया।

देवी सीता (संदेश सुनकर) दृढ़तापूर्वक विचारने लगी– अगर प्रभु श्रीराम की यही आज्ञा है तो मैं कल प्रातः यज्ञ के सभा मंडप में शपथ देने अवश्य ही जाऊँगी।

आज की रात्रि देवी सीता के लिए अत्यन्त कठिन प्रतीत हो रही थी। उन्हें श्रीराम के साथ बिताया प्रत्येक क्षण मानों अनुभव हो रहा था। जब श्रीराम लक्ष्मण पहली बार महर्षि विश्वामित्र के साथ मिथिला आए थे। जब मिथिलावासियों ने, उनकी सखियों ने श्रीराम–लक्ष्मण के दर्शन किए तो वे सभी सखियाँ सीता के समक्ष दोनों भाइयों का बखान करते तृप्त ही नहीं होती थी।

जब पिताश्री (राजा जनक) ने श्रीराम को देखा तो अपलक निहारते ही रहे। देह को क्षणभंगुर मानकर देह में अनासक्त रहने वाले, निर्गुण ब्रह्म की उपासना करने वाले विदेहराज जनक असमंजस में पड़ गए और साथ आए महर्षि विश्वामित्र से बरबस ही पूछ पड़े– मुनिवर ! इन दोनों कुमारों को देखकर मेरे मन में इनके प्रति आकर्षण उत्पन्न हो गया है। ऐसा लगता है मानों इन दोनों में कोई मोहिनी हो। मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है मानों साक्षात सगुण ब्रह्म ही मेरे समक्ष खड़े है। इनकी उपासना करने का मन करता है, इन्हें देखकर आँखें तृप्त ही नहीं हो रही है।

तब महर्षि विश्वामित्र बरबस ही मुस्कुरा दिए थे और उन्होंने पिताश्री से कहा– राजन्, आप जैसे ज्ञानी का मन अनुचित की ओर आकर्षित हो ही नहीं सकता। इन दोनों कुमारों में अवश्य ही भुवन मोहिनी है, कदाचित हम भी आपकी बात से सहमत है।

जब माँ सुनयना ने श्रीराम से भेंट की, तब माँ की अवस्था भी पिताश्री की भांति हो गई थी। माँ के मुख से बरबस ही निकला– अरे! ये तो कितने सुकुमार है। वय में भी बालक से ही लगते है। ये महर्षि परशुराम द्वारा दिए शिव धनुष पर प्रत्यन्चा कैसे चढ़ा पाएंगे? हे ईश्वर! मुझे मेरी पुत्री सीता के लिए ये ही उपयुक्त वर लगते है। आप कोई चमत्कार कर शिव धनुष को भारहीन कर देना ताकि ये प्रत्यंचा चढ़ा पाए और मेरी सीता इनका वरण कर पाए।

देवी सीता (मन ही मन में)– माँ (सुनयना) की यह प्रार्थना फलीभूत भी हो गई, देखते ही देखते मेरा विवाह श्रीराम से हो गया और मैं रघुकुल की ज्येष्ठ वधु बनकर अयोध्या आ गई। अयोध्या में पिताश्री एवं तीनों माताओं का लाड़–दुलार तथा तीनों देवर एवं देवरानी बनकर आई मेरी छोटी बहनें, सबकुछ एक सुंदर स्वप्न की भांति था। पति परमेश्वर तो मानों साक्षात ईश्वर का अवतार थे फिर, एक दिन राज्याभिषेक होते–होते चौदह वर्ष का वनवास हो गया। मेरे तर्क और विश्वास के समक्ष श्रीराम नतमस्तक हुए और मैंने उनके साथ वन की ओर प्रस्थान किया। उस समय मैं इतनी प्रसन्न थी, मानों भ्रमण पर जा रही हो। रावण द्वारा मेरे अपहरण के पूर्व का हमारा वनवास सुखमय ही बीता। मेरे प्रभु श्रीराम सप्ताह के प्रत्येक दिन एवं दिन के आठों प्रहर मेरे ही संग थे। इसके पूर्व ऐसा कभी नहीं हुआ था। प्रत्येक क्षण उन्हें अपने साथ पाकर मैं अभिभूत थी। उनके साथ बिताए समय के आगे स्वर्ग का ऐश्वर्य भी कुछ नहीं।

फिर एक दिन साधु वेशधारी रावण छल से मेरा हरण कर लंका ले गया। उस एक वृतांत ने मेरा संपूर्ण जीवन बदल दिया। लंका में दुर्दांत राक्षस–राक्षसियों के मध्य इतनी यातना झेलकर भी यदि मैं जीवित रह पाई तो उसके पीछे प्रेम और विश्वास की वह डोर थी, जो मेरे व प्रभु श्रीराम के मध्य पनपी थी। यह डोर ही लंका में मेरा आधार बनी। यही डोर मेरी प्रेरणा भी है और आज तक मेरा आधार बनी हुई है। इस डोर को अब मुझे

लव–कुश को सौंपना होगा ताकि लव–कुश व श्रीराम तीनों इस डोर से बंधे रहे।

देवी सीता (विचार करने लगी)– मुझे अयोध्यावासियों पर दया आती है। जो सत्य समय के साथ स्वतः प्रमाणित हो चुका है उसे और प्रमाण की क्या आवश्यकता?

प्रजा अपनी महारानी को न समझ पाई, कोई बात नहीं किन्तु, इतने वर्ष उपरांत भी प्रजा अपने महाराज को क्यों नहीं समझ पा रही है? जो प्रजा रामराज्य की बातें करती नहीं अघाती, श्रीराम के न्यायप्रिय होने की दुहाई देती रहती है वही प्रजा अपने महाराज श्रीराम के मन के भाव क्यों नहीं समझ पा रही?

प्रजा महाराज राम से, गुरू वशिष्ठ से या अन्य ज्ञानीजनों से प्रत्यक्ष संवाद क्यों नहीं करती कि, महारानी सीता के संबंध में आप लोगों का क्या मत है, और क्यों आप उस निष्कर्ष पर पहुँचे है? प्रजा उन तथ्यों की गहराई में क्यों नहीं जाना चाहती ?

प्रजा चाहे तो अपनी शंका का समाधान महर्षि गौतम या स्वयं ब्रह्माजी से कर सकती है। यह तथ्य तो सर्वविदित है कि मेरी अग्नि परीक्षा के समय ब्रह्माजी साक्षात् प्रकट हुए थे। ब्रह्माजी विधि के देवता है, संसार के समस्त नियमों जैसे विधि और निषेध की रचना व संचालन का दायित्व उन्हीं का है। प्रजा मेरे चरित्र का प्रमाण उनसे क्यों नहीं लेना चाहती ?

होना तो यह चाहिए कि, वे प्रजाजन जो वास्तव में मेरे प्रति जिज्ञासु है वे स्वयं कुछ ऐसा पुरूषार्थ करें/तप करें कि वे ब्रह्माजी से भेंट कर पाए और अपनी जिज्ञासा शांत कर लें। यदि राक्षस जाति के लोग जैसे– रावण, कुंभकर्ण आदि अपने मन इंद्रियों को संयम में रख कर, अपने पुरूषार्थ का उपयोग कर, कठिन तप द्वारा अपना अभिष्ट वर प्राप्त कर पाए तो मनुष्य जाति के लिए तप करना इतना भी कठिन नहीं।

प्रजाजन यदि चाहे तो स्वयं लंका जाकर सारी वस्तुस्थिति ज्ञात कर सकते है, कि– लंका में देवी सीता कहाँ रही ? किस अवस्था में रही ? कब तक रही ?

मुझे (देवी सीता को) दिन–रात डराने–धमकाने वाली राक्षसियाँ तो लंका में बिताए मेरे प्रत्येक क्षण का हिसाब देने में सक्षम है।

रावण वध के पश्चात मुझे प्रताड़ित करने वाली समस्त राक्षसियाँ भय के मारे थर–थर काँपने लगी थी और मेरे चरणों में गिरकर बारम्बार क्षमा मांगते हुए कहने लगी थी–

देवी सीता ! हमने आप पर बहुत अत्याचार किए किन्तु, हमने अपनी इच्छा से आप पर अत्याचार नहीं किए। हमने तो मात्र हमारे स्वामी दशानन की आज्ञा का पालन किया। आप तो जानती है, अपने स्वामी की आज्ञा पालन ही दास–दासी का कर्तव्य है।

हमें क्षमा कर दीजिए, देवी! हम आपकी शरण में आई है।

उस समय मेरे द्वारा उन्हें अभय देने के उपरांत उन सभी ने मुझसे जो कहा, काश कोई अवधवासियों को बता सकता –

देवी सीता! आपको शत्–शत् नमन!

दशानन के समक्ष देवता हो या दानव, सभी नतमस्तक थे, ऐसे में दशानन जैसे अहंकारी व्यक्तित्व को उसके अपने राज्य में उसके अधीनस्थों के सामने अपने तर्कपूर्ण और निर्भीक संवाद से निरूत्तर करने का कार्य केवल और केवल आप कर सकती है, देवी।

आपके विवेक और साहस को शत्–शत् नमन।

दशानन द्वारा इतना सताने पर भी आप अपने निर्णय पर अटल रही, आपके धैर्य को शत्–शत् नमन।

दशानन के अधीन रहकर भी दशानन की छाया तक स्वयं पर पड़ने नहीं दी, आपके सतीत्व को शत्–शत् नमन।

आपका श्रीराम के प्रति प्रेम–विश्वास देखकर हम अभिभूत है। आपके कारण ही जीवन के लिए प्रेम–विश्वास की महत्ता हमें समझ में आई। आपके प्रेम–विश्वास को शत्–शत् नमन।

दशानन से युद्ध केवल श्रीराम ने ही नहीं किया अपितु आपने भी किया। जहाँ श्रीराम ने दशानन को भौतिक धरातल पर परास्त किया, वहीं आपने दशानन को मनोवैज्ञानिक रूप से पराजित किया।

दशानन द्वारा दी जाने वाली यातनाओं से भी आपका मनोबल नहीं टुटा। आपके अंतर्मन की शक्ति, आपकी वीरता को शत्–शत् नमन।

हमने तो आज तक भय–प्रतिशोध का ही शासन देखा है। हमने आपको अत्यन्त दुःख दिए, उसके उपरांत भी आपने हमें सहज ही क्षमा कर दिया।

आपकी करूणा एवं क्षमाशीलता को शत्–शत् नमन।

आपके ममतामयी व्यक्तित्व ने हम राक्षसियों का जीवन बदल दिया। आपका सानिध्य पाकर हमारा जीवन धन्य हो गया।

आपको बारम्बार नमन!

देवी सीता! अब लंका में चाहे किसी का भी शासन रहे किन्तु, हमारे हृदय पर सदैव आपका ही राज रहेगा।

इस प्रकार कहते हुए उन राक्षसियों ने नम आँखों से मुझे विदाई दी।

इसे विधि की विडम्बना कहूँ या कुछ और कि, लंका में बंदिनी के रूप में ग्यारह मास व्यतीत कर दुर्दान्त राक्षसियों के हृदय में स्थान बनाने वाली अवध की महारानी सीता अपनी ही प्रजा के हृदय में अपने प्रति विश्वास नहीं जगा पाई।

क्यों प्रजा के मन में अपनी जिज्ञासा शांत करने हेतु स्वयं पुरूषार्थ करने की भावना जागृत नहीं होती?

क्यों प्रजा स्वयं सत्य को खोजने का प्रयास नहीं करती ?

क्यों सत्यपरायण, धर्मपरायण मनुष्य को सदैव अपनी सत्यता का प्रमाण देना होता है ?

अपनी सत्यता का प्रमाण देने में, अनावश्यक नकारात्मकता से निपटने में उस मनुष्य का संपूर्ण जीवन व्यर्थ चला जाता है और संपूर्ण मानवता को उन्नत बनाने में उस मनुष्य के योगदान से मानवता वंचित रह जाती है।

वनदेवी (मन ही मन में)– कुछ प्रजाजन महारानी सीता को निर्दोष मानते है तो क्यों वे सबके समक्ष आकर अपना पक्ष नहीं रखते? 'रामराज्य' में तो प्रत्येक व्यक्ति को अपने विचार प्रकट करने की स्वतंत्रता है। कारण एक ही है– ये प्रजाजन भी पुरूषार्थ करना नहीं चाहते।

एक ऐसी निर्मूल शंका (जिसका अस्तित्व न तो पहले कभी था, न है और न ही कभी रहेगा) का बोझ हम दोनों पति–पत्नी आजीवन ढोते आ रहे है। राजवंशी होते हुए भी हम दोनों पति–पत्नी को राजमहल के वैभव–ऐश्वर्य की कामना कभी नहीं रही। हम दोनों तो एक–दूसरे के साथ को ही संसार का सबसे बड़ा सुख मानते थे। जब तक हम दोनों साथ थे, तब तक सांसारिक कष्ट या जीवन में कोई अभाव अनुभव ही नहीं हुआ। यह एक प्रश्न जो वर्षों पहले हम दोनों पति–पत्नी के बीच आ खड़ा हुआ था, इतने वर्षो उपरांत यह आज भी हम दोनों के बीच वैसे ही बना हुआ है। इस तुच्छ प्रश्न का निराकरण अत्यन्त आवश्यक है। मुझे इसका ऐसा उत्तर देना है कि सदियों तक इसकी गूंज सुनाई दे। वैसें भी लव–कुश अब बड़े हो गए है और भावनात्मक रूप से परिपक्व है। अतः अब लव–कुश को माँ के लाड़–प्यार से ज्यादा पिता के अनुशासन तथा सामाजिक सुरक्षा की आवश्यकता है।

देवी सीता प्रार्थना करने लगी– हे माँ गौरी! कल मेरे जीवन का बहुत ही महत्वपूर्ण दिन है। मेरा साथ देना माँ, कल इतने वर्ष उपरांत मुझे मेरे आराध्य श्रीराम के दर्शन होंगे, उन्हें देखकर कहीं मैं शिथिल न पड़ जाऊँ।

यही सब सोचते–विचारते रात्रि बीत गई।

प्रातःकाल होते ही वनदेवी ने यज्ञशाला की ओर प्रस्थान किया।

वनदेवी की शपथ

भगवती पृथ्वी विनती तुमसे, मेरा परम निदान करो।
यदि जीवन मेरा राममय, तो मुझको अपनी शरण में लो।।

राम ही प्रियतम राम जीवनधन, क्या प्रमाण दिखलाऊँ मैं।
राम संग धन्य सिया का जीवन, ईश बारम्बार मनाऊँ मैं।।

प्रति जन्म मैं राम को पाऊँ, शेष कोई कामना नहीं।
रामकाज है पूर्ण किए, निज आँचल में समा लो माँ महि।।

लव–कुश मेरी गोद में खेले, उन्हें पिता का प्यार मिले।
रघुकुल दीपक दोनों भाई, उन्हें उचित सम्मान मिले।।

महाराज राम और अन्य सभी महानुभाव सभा मंडप में पधार चुके, यह जानकर महर्षि वाल्मीकि ने देवी सीता (वनदेवी) को साथ लेकर सभा मंडप की ओर प्रस्थान किया। आगे–आगे महर्षि चल रहे थे, उनके पीछे देवी सीता शीश झुकाए हाथ जोड़कर चल रही थी। वल्कल वस्त्रों में, माथे पर बड़ी सी बिंदी, मांग में सिंदूर, सिर पर पल्लु, अश्रुपूरित नैन होने पर भी सत्य के ओज से दमकता उनका व्यक्तित्व ऐसा शोभायमान हो रहा था, मानों साक्षात् वेदमंत्रों की ऋचाएँ मूर्तरूप धारण कर महर्षि के पीछे–पीछे चली आ रही हो। देवी सीता के नेत्रों से अविरल अश्रुधारा बह रही थी और उनका मन अपने आराध्य श्रीराम का चिंतन कर रहा था। देवी सीता के आगमन से संपूर्ण सभा मानों दैदीप्यमान हो उठी थी।

देवी सीता को आते देख संपूर्ण सभा स्तब्ध थी। श्रीराम तो मानों जड़वत् हो गए थे, उनके नेत्रों से भी अश्रु झरने लगे।

सभा मंडप में पधारकर महर्षि वाल्मीकि ने महाराज राम से कहा– महाराज! देवी सीता स्वधर्म का पालन करने वाली परम पतिव्रता है। अयोध्या से निर्वासन उपरांत इन्होंने मेरे आश्रम में शरण ली थी, तब मैंने मन–बुद्धि–इंद्रियों द्वारा देवी सीता की शुचिता का भलीभांति निश्चय करके ही इन्हें अपने संरक्षण में लिया था। उस समय ये गर्भवती थी। जिन्हें आप ऋषि कुमार समझ रहे है, वे दोनो लव–कुश जुड़वां भाई है तथा आपके पुत्र है।

महाराज मैं प्रचेता का दसवां पुत्र हूँ, मैंने आज तक मिथ्याभाषण नहीं किया है। मैं सत्य कहता हूँ देवी सीता दोष रहित है।

भरी सभा में महर्षि वाल्मीकि ने प्रण लेते हुए कहा–

मैंनें अनेक युगों तक कठिन तप किया है। यदि देवी सीता में दोष हो, तो मुझे तप का फल न मिले।

मैंनें मन–वचन–कर्म से कभी कोई पाप नहीं किया। यदि देवी सीता भी निष्पाप हो, तभी मुझे अपने पुण्यकर्मों का फल मिले।

यह सुनकर महाराज राम हाथ जोड़कर बोले– महामुनि! आप धर्मज्ञ व ज्ञानी है। आपने देवी सीता के संबंध में जो भी कहा उससे मैं पूर्णतः सहमत हूँ। देवी सीता पर मुझे पहले भी पूर्ण विश्वास था और आज भी

है। यह बात देवी सीता भी अच्छी तरह जानती–समझती है। यहाँ सभा में उपस्थित सभी महानुभाव यह शपथ देवी सीता के मुख से सुनना चाहते है।

महाराज राम का वक्तव्य सुनकर सबकी दृष्टि देवी सीता पर ठहर गई। महाराज राम मन ही मन अत्यन्त व्याकुल हो उठे।

देवी सीता ने अब तक अपना शीश झुकाए रखा था। अभी तक वे अपने आराध्य श्रीराम का दर्शन नहीं कर पाई थी। उन्होंने हाथ जोड़कर सबको प्रणाम किया। माँ गौरी एवं पृथ्वी माता का ध्यान कर कहा–

मैंने आज तक रघुनंदन के अतिरिक्त किसी अन्य पुरूष का मन से भी चिंतन नहीं किया (स्पर्श का तो अस्तित्व ही नहीं)। यदि मेरा यह कथन सत्य है तो भगवती पृथ्वी मुझे अपनी गोद में स्थान दे।

यदि मैं मन–वचन–कर्म से अपने आराध्य श्रीराम को समर्पित हूँ, तो भगवती पृथ्वी मुझे अपनी गोद में स्थान दे।

प्रभु श्रीराम के अतिरिक्त मैं किसी अन्य पुरुष को नहीं जानती, यदि यह सत्य है तो भगवती पृथ्वी मुझे अपनी गोद में स्थान दे।

ऐसा कहकर देवी सीता ने अंतिम बार अपने आराध्य श्रीराम की ओर देखा, मानों उनसे विदा ले रही हो और कह रही हो– आपको पाकर मैं धन्य हो गई ।

श्रीराम कातर दृष्टि से देवी सीता की ओर देख रहे थे, मानों क्षमायाचना करते कह रहे हो– बस सीते! अब और नहीं!

कोई कुछ समझ पाता उसके पूर्व ही भगवती पृथ्वी सिंहासन सहित धरातल से प्रकट हुई और देवी सीता का अभिनंदन करते हुए उन्हें सिंहासन पर बिठा लिया एवं अपने साथ रसातल में ले जाने लगी। भगवती पृथ्वी को सिंहासन सहित प्रकट होता देख संपूर्ण सभा जड़वत हो चुकी थी। इसके पूर्व कभी ऐसा देखा या सुना नहीं गया। यह सभा में उपस्थित सबकी कल्पना से परे था। भगवती पृथ्वी संग सिंहासन पर विराजमान महारानी सीता साक्षात् देवी स्वरूपा दिखाई दे रही थी।

देवी सीता सबके कल्याण की मंगल कामना करते हुए रसातल में प्रवेश कर गई। अभी तक जो सभा देवी सीता के ओज से प्रदीप्त हो उठी थी, वह देवी सीता के धरती में समाहित होते ही निस्तेज सी हो गई। समय मानों कुछ क्षण के लिए थम सा गया। कुछ समय पश्चात वहाँ उपस्थित सभी महानुभावों की चेतना मुखर हुई। सबके हृदय में हर्ष और शोक की भावनाएँ हिलोरे ले रही थी।

स्वयं को इस अभूतपूर्व क्षण का साक्षी जानकर संपूर्ण सभा अभिभूत हो उठी और भावातिरेक में कहने लगी– देवी सीता! आप धन्य है, आपको शत्–शत् नमन।

इस संपूर्ण प्रसंग से लव–कुश के बालमन को गहरा आघात लगा। उन दोनों बालकों के लिए तो उनकी माँ ही उनका सर्वस्व थी। उनकी माँ ही उनका जीवन आधार थी। उनकी प्रेरणास्रोत थी। अब तक का उनका जीवन माँ के आँचल में ही बीता था। माँ का ओजस्वी मुख, करुणामयी मुस्कान, माँ का लव–कुश को पुकारना, दुलारना, सबकुछ स्मरण हो रहा था। माँ के बिना तो वे अपने जीवन की कल्पना भी नहीं कर पा रहे थे।

दोनों भाई आपस में एक–दूसरे से लिपट कर रोने लगे और कहने लगे– माँ, ओ प्यारी माँ ! ऐसी लुका–छिपी मत खेलो। पुनः प्रकट हो जाओं। हम आपके बिना नहीं रह पाएंगे।

आज महाराज राम की पीड़ा का कोई पार न था, अविरल अश्रु बह रहे थे। निःशब्द हो गए थे, मानों प्राणहीन हो चुके हो।

बहुत देर बाद वे विलाप करते हुए बोले– मेरे देखते–देखते मेरी प्राणप्रिया, लक्ष्मी समान सीता अदृश्य हो गई और मैं निःसहाय सा देखता रहा । फिर अगले ही क्षण अपनी चिर परिचित वीरोचित शैली में कहने लगे– यदि मैं देवी सीता को लंका से लौटा ला सकता हूँ तो फिर पृथ्वी के अंदर से लौटा लाना कौन बड़ी बात है।

श्रीराम हाथ जोड़कर भगवती पृथ्वी से प्रार्थना करने लगे– हे पूजनीय भगवती पृथ्वी! कृपा कर मेरी सीता मुझे पुनः लौटा दो। सीता के बिना मेरे जीवन का कोई अर्थ नहीं। अतः या तो सीता को लौटा दो अथवा मुझे भी

अपने में समाहित कर लों क्योंकि, अब मैं देवी सीता के साथ ही रहना चाहता हूँ।

मैं रघुवंशी राम आपसे करबद्ध निवेदन करता हूँ भगवती पृथ्वी! कृपा कर मेरी विनती स्वीकार करों।

जब महाराज राम की विनती का कोई प्रभाव न हुआ, तब वे शोकाकुल होकर आवेश में आ गए और ऊँचे स्वर में कहने लगे– यदि आप मेरी विनती स्वीकार नहीं करोगी तो मैं क्षणभर में संपूर्ण पृथ्वी को नष्ट कर दूंगा।

यह सुनकर सभा में उपस्थित सभी महानुभाव भय से व्याकुल हो उठे किन्तु, कोई भी महाराज राम को समझाने का साहस नहीं जुटा पाया। किसी को समझ नहीं आ रहा था कि अगले पल क्या होने वाला है। महाराज राम का इस प्रकार आवेश में आकर भगवती पृथ्वी से बात करना सबके लिए अप्रत्याशित था, इसके पूर्व महाराज राम का इतना ऊँचा स्वर कभी किसी ने नहीं सुना था, यहाँ तक कि रावण से युद्ध के समय भी वे निश्चल व शांत ही थे।

सब मन ही मन में प्रार्थना करने लगे– हे ईश्वर! महाराज राम के कोप से अब आप ही हम सबकी रक्षा कर सकते है।

तभी महाराज राम की दृष्टि रोते–बिलखते लव–कुश पर पड़ी। लव–कुश में उन्हें अपनी प्राणप्रिया सीता की छवि दिखाई देने लगी। महाराज राम ने आगे बढ़कर दोनों को हृदय से लगा लिया, उनके मन में पिता का दायित्व बोध जागृत हो चुका था।

महाराज राम (मन ही मन में)– इस भाव के जागृत होने की प्रेरणा भी तुम्हीं हो सीते। मातृभाव तुम्हारे जीवन का एकमात्र उद्देश्य था तो, अब पितृभाव मेरे जीवन का परम उद्देश्य रहेगा। अब तक तुम लव–कुश में मुझे अनुभव करती रही। अब मैं लव–कुश में तुम्हें अनुभव करूँगा। जैसे लव–कुश के पालन–पोषण में तुमने माता–पिता दोनों का दायित्व निभाया, वैसे ही यह दोनों दायित्व अब मैं निभाऊँगा।

यह निश्चय कर, मन को संयत कर यज्ञ कर्म सम्पन्न किया और सभी अतिथियों को विदा करके श्रीराम व्यथित हृदय से लव–कुश को संग ले अयोध्या लौट गए।

अयोध्या में आने के पश्चात उनकी जीवनचर्या वैसी ही रही, जैसी देवी सीता के निर्वासन उपरांत थी।

प्रजा अपने महाराज व महारानी के प्रति अपराधबोध से ग्रस्त होकर पश्चाताप से भरी हुई थी, किन्तु अब बहुत देर हो चुकी थी। देवी सीता (जो उनकी महारानी भी थी) सदैव के लिए उन्हें छोड़कर जा चुकी थी परंतु, जाते–जाते भी प्रत्येक प्रजाजन के हृदय में श्रीराम और सीता को प्रतिष्ठित कर चुकी थी। अब से प्रजा अपने महाराज राम के हर वाक्य को ईश्वरीय वाक्य मानती थी।

(ईश्वरीय वाक्य– जो स्वयं प्रमाणित है।)

तब से हर अयोध्यावासी के हृदय में प्रतिष्ठित हुए श्रीराम और सीता आज भी हर सनातनी के हृदय में सीताराम के रूप में प्रतिष्ठित है और सदैव रहेंगे।

युगों–युगों तक सीताराम का यह पावन चरित्र आदर्श जीवन जीने के लिए हम सबको प्रेरित करता रहेगा।

सीताराम चरण रति मोरे, अनुदिन बढ़हु अनुग्रह तोरे।

जेही विधि होई नाथ हित मोरा, करहिं सो बेगी दास मैं तोरा।

सीताराम राम राम सीताराम . . .

सीताराम राम राम सीताराम . . .

राम सिया पर बीती सुनकर,
आज भी आँखें भर आती है।
राम सिया की बातें मन को,
आज भी हर्षित कर जाती है।।

दृढ़ संकल्पित रहे आजीवन,
भले परस्पर साथ न था।
मर्यादा में जीवन जीना,
इतना भी आसान न था।।

रामायण की हर इक घटना,
हमको प्रेरित कर जाती है।

।। आशीर्वचन ।।

''वनदेवी : सिया शौर्य गाथा'' कृति धर्म और अध्यात्म के पारंपरिक, स्थिर और संस्थागत बोध को विस्थापित करते हुए उन्हें एक जीवंत सामाजिक संरचना के रूप में पुनर्संरचित करने की कोशिश है। यह कृति उस बिंदु को प्रस्थान बिंदु बनाती है, जहाँ धर्म किसी विधान, आदेश या दृष्टांत के रूप में उपस्थित नहीं होता, बल्कि कथात्मक विस्तार में सामाजिक व्यवहार, सामूहिक चेतना और आध्यात्मिक संवेदना के अंतर्संबंधों को प्रकट करता है। इस अर्थ में 'वनदेवी' धर्म का आख्यान नहीं, बल्कि धर्म के सामाजिक रूपांतरणों का पाठ है। कृति की समकालीनता केवल समय–सापेक्ष संदर्भों तक सीमित नहीं है, बल्कि वह एक गहरे सामाजिक अर्थबोध के रूप में विकसित होती है। यहाँ समकाल का अर्थ वर्तमान की सतही उपस्थिति नहीं, बल्कि उन अंतर्विरोधों, संघर्षों और अस्मितागत प्रश्नों की पहचान है, जो आज के सामाजिक यथार्थ को निर्मित करते है। कृति में उपस्थित समाज कोई अमूर्त संरचना नहीं, बल्कि जीवित, गतिशील और अंतर्द्वंद्वों से भरा हुआ है, जहाँ आस्था और व्यवहार, परंपरा और परिवर्तन, प्रकृति और मनुष्य निरंतर संवाद की अवस्था में रहते है।

इसी समकालीन सामाजिक संरचना के भीतर लेखकीय सरोकार चाहे वे अध्यात्म के संदर्भ में हों, अपनी स्पष्ट और सघन उपस्थिति दर्ज कराते है। ये सरोकार उपदेशात्मक या वैचारिक घोषणाओं के रूप में नहीं आते, बल्कि कथा की अंतर्धारा में प्रवाहित होते हुए पाठक के बोध को विस्तार देते है। लेखकीय दृष्टि धर्म के सामाजिक स्वीकार के भीतर सांस्कृतिक अनुभव के रूप में विस्तारित होने की कोशिश करती है, जो समुदायों की स्मृति, संघर्ष और जीवन–प्रणाली से निर्मित होता है। इस प्रक्रिया में

अध्यात्म एक निजी साधना न रहकर सामूहिक चेतना का आयाम ग्रहण करता है।

'वनदेवी' में अध्यात्म और सामाजिकी के बीच का संबंध द्वंद्वात्मक न होकर सह–अस्तित्वात्मक है। यह कृति महज एक पौराणिक कथा का रूपांतरण नहीं है । यही कारण है कि अध्यात्म यहाँ पलायन नहीं, बल्कि जीवन के प्रति एक गहरे दायित्व बोध के साथ है। प्रकृति, वन, देवी और समुदाय, ये सभी प्रतीक नहीं, बल्कि सामाजिक अनुभव की इकाइयाँ है, जिनके माध्यम से यह कृति जीवन की वैकल्पिक नैतिकता का प्रस्ताव रखती है। यह नैतिकता आधुनिकता के यांत्रिक तर्क से भिन्न है, जहाँ मनुष्य और प्रकृति, सत्ता और आस्था के बीच संबंध पुनःपरिभाषित होते है। 'वनदेवी' एक ऐसी कृति है जो धर्म को कथा में, अध्यात्म को समाज में और समकालीनता को संवेदना में रूपांतरित करने के श्रम में प्रकट होती है। यह कृति हिंदी साहित्य में एक विनम्र हस्तक्षेप है । यथार्थ यहाँ इस कृति की जरूरत की अपेक्षा भाव प्रवणता में बड़ी जगह बनाता है लेकिन इसे एक नए लेखक की प्रथम उत्साही प्रयास–कृति की तरह देखा जाना चाहिए!

– भालचंद्र जोशी
कथाशिल्पी एवं संपादक
नई दिल्ली

।। आशीर्वचन ।।

श्रीराम कथा का सबसे कठिन भाग है, सीता की अग्निपरीक्षा और फिर लोकअपवाद के चलते सीता का अनिवार्य वनगमन। सामान्यजन के बीच, इस प्रसंग में श्रीराम की भूमिका को किंचित कठोर तथा सीता को पीड़ित के रूप में लक्षित किया जोता है। यह पुस्तक राम की संवेदनशीलता, भावुकता और सीता की दृढ़ता व निडरता को सहज–सरल रूप में वर्णित कर इस प्रसंग का सटीक–स्वीकार्य वर्णन करती है।

– रचना समंदर
वरिष्ठ लेखिका और सम्पादक
मधुरिमा एवं अहा! जिंदगी

वेदना जो सीता मन की, काश कभी पढ़ पाते तुम।
राम प्रजा तो कहलाए पर, राम से भर भी जाते तुम।।

राम को ईश्वर माना फिर क्यूँ, उन पर ना विश्वास किया।
अग्नि परीक्षा प्रश्न उठाकर, खुद पर ही अपकार किया।।

वैदेही वामांगी राम की, ममतामयी माँ अवध प्रजा की।
अपने अविवेक के कारण, ममतामयी आँचल दूर किया।।

माँ की ममता की छाँव में, संघर्षमय जीवन भी मुस्काता।
स्वयं ही माँ का निर्वासन कर, बने अवध के भाग्यविधाता।।

जीवन निश्चल प्रेम मांगता, प्रेम से ही जीवन चलता है।
सिया प्रेम की गंगोत्री, क्यूँ अवध को सियाविहीन किया।।

प्रेम बिना धन–वैभव तक का, होता कोई मोल नहीं।
प्रेम जन्मों के पुण्यों का फल, मनोरंजन या खेल नहीं।।

प्रेम की ऊर्जा अपरिमित, मानव को देव बना सकता।
प्रेम आनंदसूत्र जीवन का, ईश्वर तक पहुँचा सकता।।

राम राज्य का सुख भोगा, पर प्रेम से कोसों दूर रहे।
करुणामयी माँ ओझल हो गई, उस दुःख की अब कौन कहे।।

भले ही तुमने अवध में अपनी, महारानी को ठुकराया।
धन्य है सीता–राम तुम्हें भी, संग साकेत का वास दिया।।